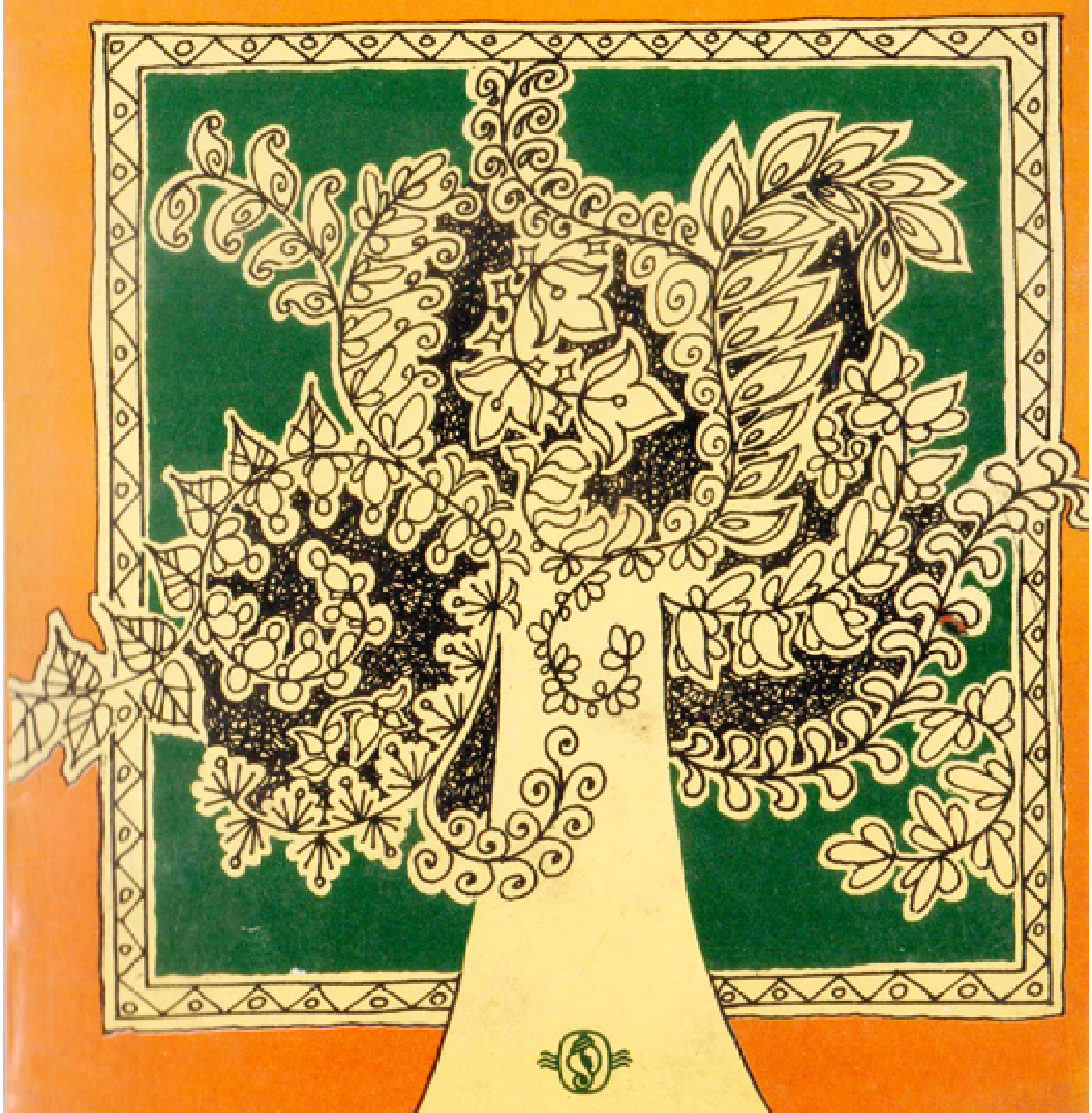
2

एक में अनेक



एक में अनेक

2

संपादन

नीलिमा सिन्हा ◇ दीपा अग्रवाल

चित्र

सुजाशा दासगुप्ता ◇ नीता गंगोपाध्याय

कवर

नीता गंगोपाध्याय

रत्न सागर

रत्न सागर प्रा० लि०
विराट भवन, मुखर्जी नगर
कमर्शियल कॉम्पलैक्स, दिल्ली 110009
फोन : 7122505, 7216094
ब्रांच : 24 रामानाथन स्ट्रीट, टी. नगर,
मद्रास 600017 • फोन : 4346325

पहला संस्करण 1995

ISBN 81-7070-199-6

भाषा एक रूप अनेक

हिन्दी भाषा एक है लेकिन इसके रूप अनेक हैं। इसी विविधता की एक झलक इस संकलन में दी गई है – कहानियों के मनोरंजक माध्यम से।

हिन्दी के विभिन्न रूपों के अतिरिक्त अलग-अलग अंचलों के अनूठे रंग सुन्दरता से उभर आए हैं। उनके रीति-रिवाज, वेश-भूषा, निजी समस्याएँ – सब दर्शाई गई हैं।

दो खण्डों में संकलित कहानियाँ उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि पाठकों को बम्बइया हिन्दी और दक्खिनी बोली से भी परिचित कराती हैं। इस विविधता से ही संकलन का नाम सार्थक होता है – एक में अनेक।

नीलिमा सिन्हा

दीपा अग्रवाल

विषय सूची

मतईपुर कलाँ

रज़िया ज़ैदी

"अम्मा, हम सिपाही बने चाहत हैं। मास्टर जी कहिन हैं कि सिपाही बहुत बहादुर होत हैं, अपने मुल्क का खातिर जानओ तक दे देत हैं। जब लड़ाई जीत के आवत हैं तो बहुत इनाम मिलत है और बहुत नाम होत है।"

अब्दुल पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव, मतईपुर कलाँ में रहने वाले एक निर्धन किसान का बेटा था। उसके पिता कई वर्ष पहले ही मर चुके थे। अब्दुल से छोटी एक बहन भी थी – चन्दा। माँ ने अपना खेत दूसरों को अद्धे बट्टे पर देकर बच्चों को पाला-पोसा और अब्दुल को गाँव के स्कूल में पढ़ने भेजा। वह पढ़ाई भी करता और खेती भी।

स्वतंत्रता दिवस पर अब्दुल ने 'जय जवान जय किसान' का नारा सुना। उसको यह नारा बहुत अच्छा लगा, लेकिन ठीक से समझ न पाया। उसने मास्टर जी से पूछा, "मास्टर जी, किसान तो हमई लोग हैं, ई जवान कौन हैं?"

मास्टर जी ने विस्तार से जवान का मतलब उसे समझाया कि फ़ौजी सिपाही को जवान कहा जाता है। फिर उन्होंने फ़ौजी जवान के कर्तव्यों के बारे में बताया कि वह अपने देश से इतना प्यार करता

है कि समय पड़ने पर अपनी जान तक न्योछावर कर देता है। देश की सेवा करना और उसकी लाज की रक्षा करना ही उसका लक्ष्य होता है।

अब्दुल के मन में अपने मुल्क के प्रति असीम प्रेम की भावना उमड़ पड़ी। उसने पूछा – "मास्टर जी, सिपाही बने के वास्ते का-का करे को होत है?"

"खूब पढ़ो, खूब खाओ और खूब कसरत करो। अपना स्वास्थ्य बनाओ और फिर अगर सचमुच तुम्हारे मन में लगन है तो एक दिन तुम अवश्य फ़ौज में भर्ती हो जाओगे।" मास्टर जी ने बताया।

अब अब्दुल और भी दिल लगा कर पढ़ने लगा। स्कूल से आकर घर पर कसरत भी करता। एक दिन माँ ने उससे पूछा – "का रे अब्दुल, तोरे ऊपर कऊन सी धुन सवार है कि खेलकूद सब छोड़-छाड़ अपने को उल्टा-पल्टा किया करत है। पढ़ै-लिखै की बात तो ठीक है, मुदा ई सब का करत है पूत?"

अब्दुल बोला – "अम्मा, हम सिपाही बने चाहत हैं। सिपाही बहुत बड़ी चीज़ होत है। मास्टर जी कहिन हैं कि सिपाही बहुत बहादुर होत हैं, अपने मुल्क का खातिर जानओ तक दे देत हैं। जब लड़ाई जीत के आवत हैं तो बहुत इनाम मिलत है और बहुत नाम होत है। और, अगर लड़ाई मा मारे जात हैं तो ओके परिवार को और ढेर रुपया-पैसा मिलत है।"

यह सुनकर माँ काँप उठी और झट से उसने अब्दुल के मुँह पर हाथ रख दिया। "ऐसन बात मुँह से न निकाल बिटवा, मास्टर जी का कहै दें। ओसे कह दे अपने पूत को सिपाही बना कर लाम पर भेज दें।" यह कह कर माँ ने अब्दुल को छाती से लगा लिया।

देहातों में तो शादी कम उम्र में ही हो जाती है। अब्दुल ने जैसे ही आठवीं पास की उसकी शादी समीप ही के एक गाँव जुगनीपुर की एक सीधी-सादी गरीब लड़की से हो गई। अब्दुल की माँ बहू से

बहुत खुश थी। हाँ, दूसरों को ये फ़िक्र थी कि बहू दहेज में क्या-क्या लाई। आखिर एक ने पूछ ही लिया, "का बहिनी, बहुरिया दहेज में कछु लाई कि ना?"

अब्दुल की माँ ने जवाब दिया – "काहे ना लाई? गुण, ढंग, सराफ़त सभई तो लाई है। ई सब का हमरे घर का है? ओही के बाप-मतारी का तो है।"

अब्दुल जो अपने दिल में ठान चुका था, वही करके रहा। वह एक दिन सिपाही बन ही गया और फ़ौज में भर्ती हो गया। माँ के रोने-बिलखने पर भी यह जवान अपने देश पर जान न्योछावर करने को सीना तान तैयार हो गया। बिदा करते समय माँ ने केवल इतना ही कहा – "जा मोरे बचवा, तोहे अल्लाह को सौंपा। तू हमरी बात ना सुनेओ तो का ओहू न सुनिहैं?"

ठाकुर रणवीर सिंह गाँव के मुखिया थे। सब उनको चौधरी काका कहते थे। इतने छोटे से गाँव में मुखिया एक बड़ी चीज़ होती है। मुखिया भी अपने आप को गाँव का राजा समझता है। लेकिन ठाकुर रणवीर सिंह की बात कुछ और थी। वे बहुत भले मानस थे। गरीब से गरीब गाँव वाला भी उनको दोस्त समझता था। सबके साथ उनका व्यवहार दोस्ताना था। हर एक की चिंता थी उनके मन में, सबके समय पर काम आते थे। अब्दुल के परिवार को ठाकुर साहब बहुत मानते थे। अब्दुल तो बचपन ही से उनका दुलारा था।

अब्दुल ठाकुर साहब के पास जाकर बोला – "काका, हमरे घर वाले अकेले हैं और हम लाम पर जात हैं।"

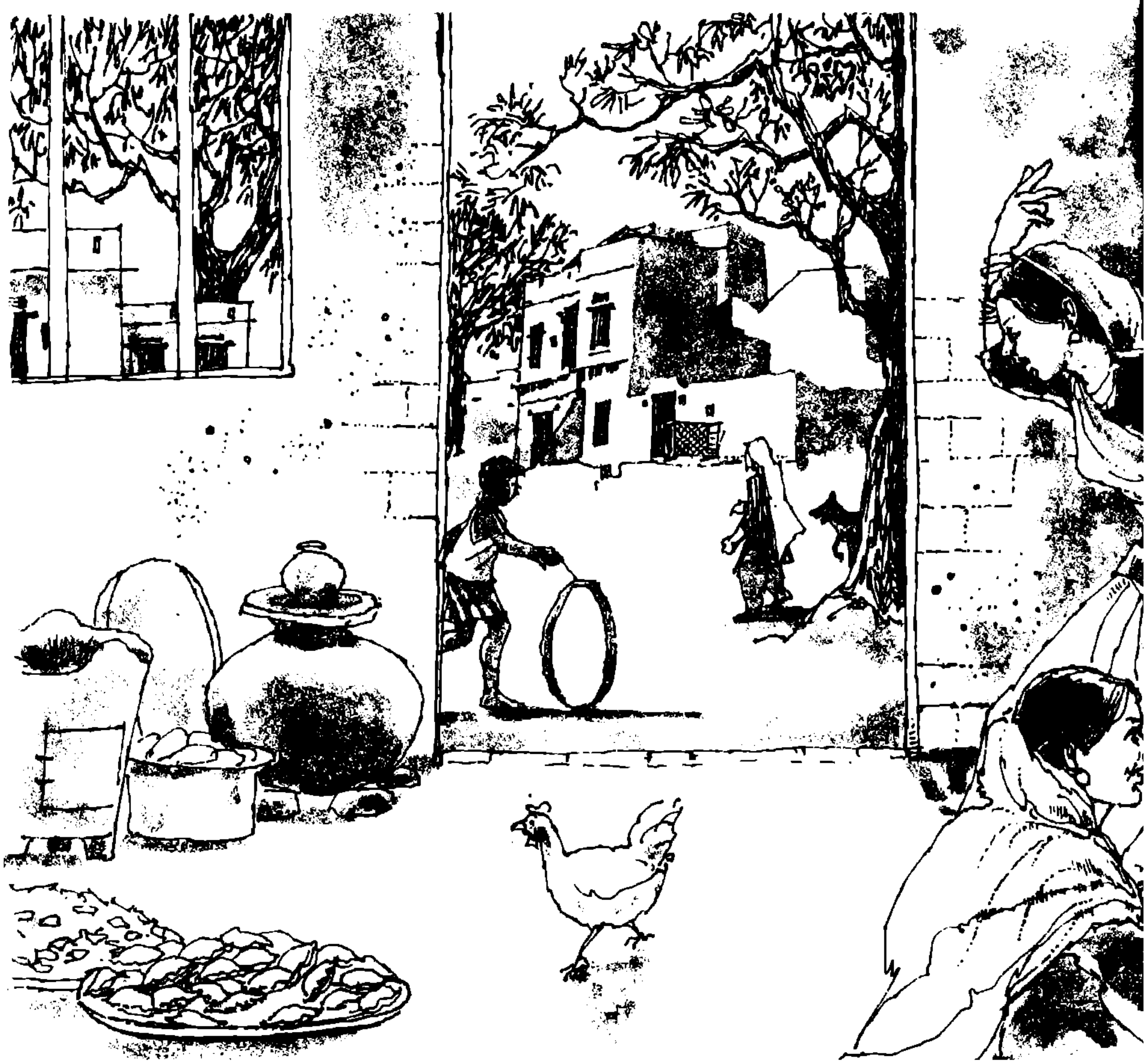
चौधरी ने बहुत प्यार से अब्दुल को डाँटा – "पगले, जब तक ई रणवीर जिंदा है तोरे घर वाले अकेले नाहिं हैं। तू जा, खुशी से जा। तू इतने बड़े मुल्क की रक्षा करे जात है और तोहार चाचा तोहार घर की रक्षा भी ना कर सकत है? जा बिटवा, भगवान तोरी रक्षा करें।"

उसने ठाकुर साहब के पाँव छुए और आशीर्वाद लेकर निकल पड़ा देश की रक्षा करने।

अब्दुल के जाने के बाद कुछ दिन तो उसके घर वाले परेशान और उदास रहे, फिर सब अपने काम में लग गए।

अब एक समस्या चन्दा की शादी की थी। उसकी शादी तय हो चुकी थी। लड़के वाले शादी की जल्दी भी कर रहे थे। अब्दुल की माँ ने उसको पत्र लिखवाया – "चन्दा की शादी जल्दी करनी है, तुम जल्दी आ जाओ।"

अब्दुल को बहुत कोशिश के बाद छुट्टी मिल गई। उसने कुछ सामान चन्दा के लिए खरीदे और खुशी-खुशी रवाना हो गया।



इतने लम्बे सफ़र में वह पूरे समय चन्दा की शादी के बारे में ही सोचता रहा, 'उसके घर वाले और चन्दा की सहेलियाँ कितनी खुश होंगी, क्या-क्या इन्तज़ाम हो रहा होगा।'

देहातों की शादी रंग-बिरंगे कपड़ों, ढोलक के गीत और धमा-चौकड़ी से ही मालूम होती है। तरह-तरह के लहँगे सिलते हैं, हरे, लाल गोटे लगे हुए, चमकीले दुपट्टे भी। खाना भी मौसम के हिसाब से पकता है – महुए की रोटी, दही की लस्सी, चने की दाल, चावल, तरह-तरह की सब्जियाँ, बेसन की रोटी वगैरह। दुनिया भर की रस्में शादी में होती हैं। एक रस्म के तौर पर लड़की को उबटन लगाया जाता है। उबटन आटे में थोड़ा तेल और ज़रा-सी हल्दी डाल कर



तैयार किया जाता है। अन्य लड़कियाँ भी आपस में हँसी-मज़ाक करती हैं, एक दूसरे पर उबटन फेंकती हैं। उसके बाद 'रतजगा' होता है। गुलगुले पकते हैं, सब चमकीले कपड़े पहनते हैं और रात भर जागते हैं।

अब्दुल ने याद किया, ड्यूटी पर जाने से दो दिन पहले जिस दिन चन्दा के सुसराल से रिश्ता पक्का होने का सन्देशा आया था, चन्दा की सहेलियाँ सब जमा थीं, गा-बजा रही थीं, खूब हँसी-मज़ाक कर रही थीं।

एक सहेली बोली – "अब तो चन्दा अपने घर की महरानी हो जइहै।"

दूसरी बोली – "हमरे लोगन से काहे मतलब रखिहै।"

तीसरी ने उदास होकर कहा – "हमरी बहिनी के जाए से सारा गाँव सन्नाटा हो जइहै।"

चौथी बोली – "ई बात तो ठीक है, मुदा हमरी गुड़िया जौने गाँव जात है, हुआँ कैसा उजियारा हो जइहै। ऐसा लगिहै मानो चाँद निकल आवा है।"

एक ने सवाल किया – "चन्दा के दुलहवा कैसन है?"

दूसरी ने जवाब दिया – "बहुत अच्छा, मानो जैसे साहब लोग होत है।"

तीसरी बोली – "का, हमरे अब्दुल भइया से अच्छा है?"

"अब ई हम कैसे कहें, हमरे भइया तो सिपाही हैं। बहुत बड़ा आदमी हैं अब्दुल भइया तो।" दूसरी ने कहा।

इन लड़कियों में एक लड़की कुछ दिन शहर रह कर आई थी। मुँह बना कर वह बोली – "तुम लोग क्या-क्या बात कर रही हो, हमारी समझ में नहीं आता है कुछ।"

एक ने चिढ़ाया – "अरे बहिनी, तोरी समझ में कैसे अइहै, चार दिन सहर मा रह कर आई हो न, बहुत गिट-पिट करे आ गवा है।"

सभी लड़कियाँ हँस पड़ीं।

अब्दुल फिर सोचने लगा, 'चन्दा को दहेज क्या जाएगा? बाँस का एक पलंग और बिस्तर, एक टोकरी, एक सूप, पीतल के दो-चार बर्तन, कुछ कपड़े, एक बोरा गेहूँ और चावल। यह सब तो दस्तूर के हिसाब से देना ही है। इसके अलावा हम अपनी चन्दा को हाथ की घड़ी और रेडियो भी देंगे। खाने में भी महुए की रोटी, चने की दाल, चावल के अलावा हम अपनी बहन की शादी में पकवान भी बारातियों को खिलाएँगे।' सोचते-सोचते उसके कान में बाबुल की आवाज़ आने लगी और ऐसा लगा कि वह चन्दा को विदा कर रहा है – 'काहे को ब्याहे बिदेस, अरे लखिया, बाबुल मोरे ··· भइया को देयो हो ऊँची अटरिया, बाबुल मोरे भेजे बिदेस, ··· अरे ओ लखिया, बाबुल मोरे ···।'

उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े और उसे लगा कि उसकी बहन उसे छोड़ कर 'बिदेस' चली गई है। उसने आँसू पोछे और उत्सुकता से बाहर देखा। अब गाड़ी गाँव पहुँचने ही वाली थी।

अब्दुल का गाँव, मतईपुर कलाँ, छोटा-सा गाँव था लेकिन आबादी अच्छी थी। लोग बड़े सुशील और साफ़ दिल थे। आपस में स्नेह और भाईचारा भी बहुत था। सब एक दूसरे के सुख-दुख के साथी थे। वह हाथ की घड़ी और रेडियो लिए खुशी-खुशी गाँव पहुँचा तो वहाँ की हालत देख कर घबरा उठा। उसे क्या मालूम, गाँव में समय बदल चुका था। अचानक गाँव में दंगा हो गया था। मामूली-सी किसी बात पर हमेशा का मेल चाकू और लाठी में बदल गया।

वह भागा-भागा अपने घर गया। वहाँ सिर्फ़ कुछ जली हुई चीज़ें मिलीं, न माँ मिली, न चन्दा, न ही उसकी बीवी – नसरीन। वह पागलों की तरह चारों ओर खोजता रहा। कोई दिखाई दे तो उससे पूछे लेकिन सब ही मुसीबत के मारे थे। एक को दूसरे की क्या खबर? किसी ने सिर्फ़ इतना बताया – "तुम्हारे घर वालों की चीख



की आवाज़ हमने सुनी थी फिर पता नहीं उनको कौन ले गया।"

अब्दुल हैरान हो गया, उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह सब उसके साथ हो रहा था। वह अपने आप पर काबू नहीं रख सका। एकदम चीखता-चिल्लाता हुआ चौधरी के घर की ओर भागा – "काका, तुम हमरे घर की अच्छी रखवाली कीये। काका, हमरी मइया और बहिनी के का हुए? तुम बहुत झूठे निकले।"

अब्दुल रोते-बिलखते चौधरी के घर पहुँचा ही था कि सामने का दृश्य देख कर काँप उठा ··· एक आदमी चौधरी के सीने पर छुरा रखे था। और भी कुछ लोग लाठी-बल्लम लिए पास खड़े थे। उनमें से एक चिल्लाया, "चौधरी रणवीर सिंह! अब्दुल के घर वालों को हमारे हवाले कर दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।"

"भइया, जब तक अब्दुल लाम पर से वापस न आ लेगा, ये हमरी अमानत हैं। हमरे जीते-जी तुम लोग इनको हाथ नहीं लगा सकते। हमरी जान ले लो, इनका ख्याल छोड़ दो।" चौधरी की बात सुनते ही अब्दुल की आँखों से फिर आँसू निकल पड़े।

वह चीख उठा – "काका, यह कैसन हुआ? हम तुमको गलत समझे। काका तुम महान हो।"

अब्दुल दौड़ कर चौधरी से लिपट गया – "काका, हमका माफ़ कर देयो। काका, हमका माफ़' कर देयो।"

अब्दुल को इस तरह चौधरी से लिपटते देख उस दंगाई के हाथ से छुरा नीचे गिर पड़ा। उसने चौधरी के पाँव पकड़ लिए और रोते हुए कहा, "चौधरी काका, हमका भी माफ कर देयो। अब्दुल भइया की माँ-बहिनियाँ हमरी भी तो माँ-बहिन हैं। ··· काका, तुम बीच में न होते तो हम अपनी मइया पर ही हाथ उठा देते। काका, तुम हमें बड़े पाप से बचायो।"

तभी दंगाइयों की एक और भीड़ आई पर यह दृश्य देख कर ठिठक गई। कुछ क्षण बाद सभी दंगाइयों की नज़रें शर्म से झुक गईं।

चौधरी ने बड़े गर्व से घोषणा की, "मेरे बच्चो, मेरे मतईपुर के जवानो! मतईपुर कलाँ का यह पहला और अन्तिम दंगा है।"

सबके हाथ से लाठी और बल्लम गिर गए और सबने एक स्वर में कहा, "हाँ काका, यह हमारी पहली और आखिरी भूल है। काका, तुम्हारी जय-जयकार।"

इसके बाद फिर तरह-तरह के नारों से मतईपुर की ज़मीन हिलने लगी। काली बदली छँट गई, गुलाबी धूप की किरणें पूरे गाँव में फैल गईं। सब लोग चन्दा की शादी के काम में लग गए और देखते-ही-देखते मतईपुर कलाँ, 'मोरी दूरों से आई बरात' की धुन पर झूम उठा।

बीजी के दो मिनट

किरण बाबल

"वे कुछ नई हुंदा सरकार नूं," बीजी तपाक से बोलीं,
"ए सरकार वी साडी और गड्डी वी साडे वास्ते वे ··· और
मेरे वास्ते तू गड्डी दा मालिक ··· रब भला करे तेरा,
बस गड्डी दो मिनट होर रोक दे।"

"नीं बन्तो ··· मेरी जुत्ती कित्थे वे ?" बीजी ने इधर-उधर देखते हुए पुकारा।

"हुने ल्याई, बीजी।" बन्तो ने अपना काम रोक कर कहा और जूती देने चली गई।

मैं और मेरी छोटी बहन गुड्डी बाहर आंगन में चारपाई पर बैठे बन्तो का दूध बिलोना देख रहे थे। मिट्टी के घड़े में डली मथानी पर लिपटी रस्सी के दोनों छोरों को हाथों से पकड़ बन्तो खींच-तान रही थी – गड़ड़-गड़ड़ ···। हम बड़े चाव से उसका यह दूध बिलोना देख रहे थे।

जूती पहनकर बीजी जब बाहर आईं तो किसी जरनैल से कम नहीं लग रही थीं। टमाटर से लाल-लाल गाल, चश्मे के भीतर से चमकती उनकी आँखें, सिर पर सफ़ेद जालीदार चुन्नी और हाथों में उनकी वही लाल शनील की थैली लटक रही थी।

"अज ते बड़े सोने लग रए हो बीजी।" बन्तो ने देखते ही तपाक से कहा।

"मर जानीं नज़र ना ला," बीजी ने सिर पर चुन्नी ठीक करते हुए कहा, "पीपा चक ··· पीपा।"

हम हँस पड़े, 'लो, इस उम्र में भी बीजी को नज़र लगने का डर लगा है।' सामान उठाकर हम सब चल पड़े। जिधर से बीजी गुजरतीं, गाँव की औरतें झट से कहतीं, "पैरीपौना बीजी, अज कित्थे जा रहे हो?"

बीजी भी अपने मोती जैसे दाँत (खैर, अब तो नकली हैं) निकाल कर हँस कर बड़ी शान से कहतीं, "जिंदे रहो पुत्तर ··· ऐ मेरा दोता पप्पू, सुख नाल दसाँ साल दा हो गया वे। और ऐ मेरी दोती गुड्डी वे," और हमें झट से आगे कर कहतीं, "ऐना वास्ते बिस्कुट बनवान जा रई हाँ।"

बीजी हमें जब-जब आगे करतीं मुझे बड़ी खीज़ आती। हमारा तो अच्छा तमाशा बन गया। अपनी खीज़ दूर करने के लिए मैंने उनसे पूछा, "बीजी, बेकरी कहाँ है?"

"बिक्री? ओ की हुँदा वे पुत्तर?" उन्होंने हैरानी से पूछा।

"ओहो, बिक्री नहीं ··· बेकरी ··· बेकरी ··· वो आप क्या कहते हो ··· हाँ, भट्ठी, बीजी, भट्ठी।"

"बस दो मिनट होर पुत्तर ··· ऐ इक दो सरसों दे खेत पार कर लइए।" और खेत के किनारे-किनारे चल पड़ीं।

चारों ओर हरियाली देखकर पहले तो बड़ा अच्छा लगा, फिर जल्दी ही मन ऊब गया। हम जब-जब पूछते, बीजी 'बस दो मिनट होर,' कहकर आगे बढ़ जातीं। आखिर हम एक मकान के सामने आ पहुँचे।

"लो, गुड्डी, पप्पू," बीजी ने ज़ोर से कहा, "ओ की कंदे ने ··· हाँ, बिक्री आ गई।"

हम खिलखिला कर हँस पड़े और बीजी को टोका, "बिक्री नहीं बीजी ··· बेकरी ··· बेकरी।"

"चल मर जानीं," बीजी हाथ झटककर बोलीं, "बिक्री ··· बेकरी ··· बकरी सब इक ही हुंदा वे।"

यह सुन हम सबने एक और ठहाका लगाया, फिर एक साथ बोल उठे, "बकरी घास खाती है बीजी, और बेकरी में बिस्कुट बनते हैं।"

"हाँ-हाँ, ओवोई," बीजी हँस पड़ी, "हाय, हाय, नी पिछे ही पै जांदे ने।" और हाथ झटककर अन्दर चली गईं।

अन्दर घुसते ही उन्होंने ज़ोरदार आवाज़ में कहा, "खैराती राम, की हाल-चाल है?" फिर सामान देकर बोलीं, "ऐना बच्चयां वास्ते ख़ूब वड्डे-वड्डे और खस्ते बिस्कुट बनाईं।"

तख़्तपोश पर बैठा आदमी झट उठ खड़ा हुआ, "आओ, बीजी आओ।" फिर हमें देखकर मुस्करा कर बोला, "अच्छा, बच्चे नानके आए नें। आओ-आओ बैठो।" और हमें अपने तख़्तपोश पर ही बिठा लिया।

बीजी थोड़ी देर नाप-तौल देखती रहीं, फिर ज़रा पास आकर बोलीं, "ओए खैराती, जरा अगे हो जा ··· दो मिनट साँ लैन दे।"

अब तख़्तपोश पर इतनी जगह तो थी नहीं।

"तुस्सी इधर बैठो, बीजी।" खैराती राम अपनी जगह से उठ कर बोला।

"बस दो मिनट, खैराती," बीजी बैठती हुई बोलीं, "जरा साँ लै लवां ··· जिऊँदा रवें।"

सामने रखे बोइयामों को देखते ही बीजी बोलीं, "ए ताज़े बिस्कुट हैगे न खैराती?"

"हाँ-हाँ, बिल्कुल ताज़े," खैराती ने कहा, "लो, खा के देखो।" और बोइयाम से निकाल-निकाल कर हमें बिस्कुट देने लगा।

थोड़ी देर में बिस्कुटों से भरा पीपा एक आदमी कमरे में लाया।

"लो बीजी, त्वाडे बिस्कुट तैयार हो गए – पूरे पंज किलो।" खैराती राम ने तौलते हुए कहा।

"किन्ने पैसे?" बीजी ने थैली खोलकर पूछा।

"दो रुपए किलो दे हिसाब नाल दस रुपए।" उसने कहा।

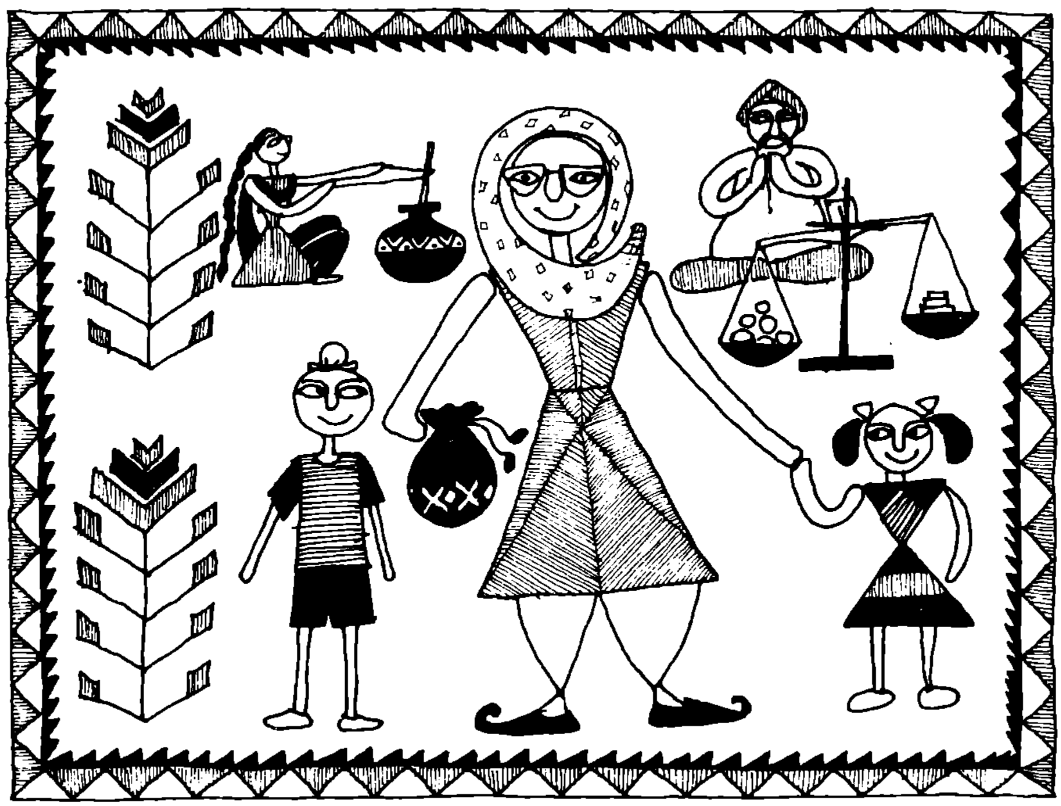
"हाय नीं मैं मर जावां," अपनी ठुड्डी पर हाथ रख कर बीजी बोलीं, "ऐ की लुट मचाई वे, खैराती?" और थैली का मुँह जैसे खुला था वैसे ही फट से बंद हो गया।

"की करां बीजी, तुस्सी आप देखो किनी महंगाई है?" खैराती राम ने समझाने की कोशिश की।

मुझे लगा कि वह ठीक कह रहा था। मैंने धीरे से बीजी के कान में कहा, "दे दो ना, बीजी।"

"विच नई बोलदे, पुत्तर।" बीजी ने धीरे से घुड़की दी, फिर उसकी तरफ़ मुड़कर बोलीं, "देख खैराती, ऐ बिस्कुट मैं थोड़ी ना खाने नें

ऐ बच्चे पिंड आए ने ··· छुट्टियाँ विच ··· ऐ की कैनगे



नानी दे पिंड ऐने मैंगे बिस्कुट?" फिर समझाती हुई बोलीं, "देख खैराती, तू मेरे पुतरां वरगा है ··· ऐ तेरे वी ते भतीजे ने।"

"ओ ते ठीक है बीजी ··"

"मैं नईं देने दस रुपए। मै ते पंज रुपए ही देआंगी।" बीजी ने ज़ोर देकर कहा और जबरदस्ती उसे पाँच रुपए पकड़ा दिए।

बेचारे खैराती राम की एक न चली। बड़ी फीकी हँसी हँस कर बोला, "जिस्तरा त्वाड्डी मरजी, पर रिज़क दी सौं, इस विच बौत घाटा है।"

"कोई घाटा-वाटा नहीं ··· ऐना बच्चयां कोलों घाटा पूरा करना वे?" यह कहकर बीजी ने बन्तो को आवाज़ दी, "चल नीं बन्तो, पीपा चुक।"

मारे शर्म के मैं पानी-पानी हो रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कि किधर देखूँ। क्यों करती हैं बीजी ऐसा ··· वो भी सिर्फ़ पाँच रुपए के लिए। रह-रह कर खैराती राम का चेहरा आँखों के आगे आ रहा था मगर बीजी के आगे उसकी एक न चली।

घर आकर हम निढाल से चारपाई पर गिर पड़े। तब बन्तो ने हमें फेंटा मारकर झाग वाला ठंडा दूध और आम खाने को दिए। खा-पी कर मैं बीजी के पास लेट गया और कहानी सुनाने की ज़िद करने लगा। बीजी खूब लटके लगाकर कहानी सुनातीं और बीच-बीच में खुद भी ज़ोरों से हँस पड़तीं और हम उनके थुल-थुल बदन पर हाथ फेर-फेर हँसते। इस बार उन्होंने छह फुट लम्बी मौसी और चार फुट लम्बे मौसा जी की कहानी सुनाई और यह भी बताया कि वो पास के पिंड पाने गाँव में रहते थे। कहानी इतनी मज़ेदार थी कि हमारा दिल उस मौसी को देखने के लिए मचल गया।

मैंने पूछ ही लिया, "हम मौसी जी से मिल नहीं सकते क्या?"

"क्यों नहीं?"

"तो कब चलोगे?" हमने एक साथ पूछा।

"परसों चलेंगे," बीजी ने कहा, "महीने दा आखिरी इतवार वे। उथे मेला लगदा वे, और वीरॉं नाल वी मिलांगे।"

"वहाँ मेले में क्या-क्या होता है बीजी?" हमने पूछा।

"मेले विच ढेर सारी चीज़ाँ मिलन गियाँ।"

"अच्छा," हमारी आँखें चमक उठीं कि गाँव का बाज़ार देखने को मिलेगा।

हमारी नानी का घर नुक्कड़ पर है। सामने ऊँची ढलान वाला खुला मैदान है और ढलान के ऊपरी छोर से रेलवे लाइन जाती है। कच्चा प्लेटफार्म और बुकिंग आफिस के नाम पर एक छोटा कमरा है। हम रोज़ ट्रेन को देखते थे। 'अब उसी में बैठकर जाएँगे' यह सोच कर हमें बहुत अच्छा लग रहा था।

अगले दिन बीजी ने जगाया, "उठ गुड्डी, पप्पू पुत्तर, जाना नई?"

हम आँखें मलते उठ गए, "अरे बीजी, आप तैयार भी हो गईं?"

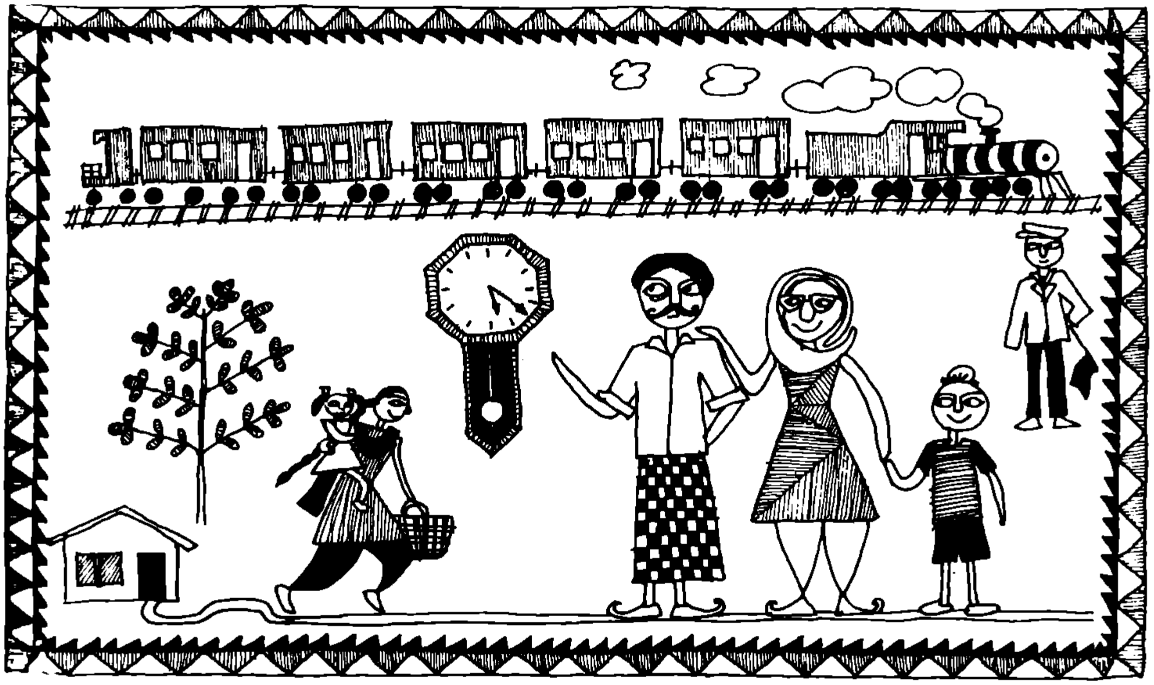
"होर की ··· हुन छेती कर। गड्डी अधे घंटे विच आन वाली वे।"

"बस, दो मिनट बीजी," यह कहते ही मैं और गुड्डी एक दूसरे को देख मुस्करा पड़े। बीजी का दो मिनट हम पर भी असर कर गया। हम जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। बात-बात पर बीजी की आवाज़ सुनाई दे रही थी, "बन्तो यह कर, बन्तो वह कर, मदन छेती कर, खान वाली टोकरी बना।"

इतने में दूर से सीटी की हल्की आवाज़ सुनाई दी।

"लो, गड्डी वी आन वाली है," बीजी ने जल्दी से मेरा हाथ पकड़ा और बन्तो से कहने लगीं, "नीं बन्तो, तू गुड्डी नू लेकर आ और मदन, खान वाली टोकरी ले के छेती आईं, मैं जाकर टिकट लैनी हाँ। छेती आईं ··· गड्डी सिर्फ दो मिनट रुकदी वे।" यह कहती हुई मुझे साथ लिए फटाफट चढ़ाई चढ़ने लगीं।

बीजी ने टिकट लिए ही थे कि गाड़ी छुक-छुक करती स्टेशन पर आकर रुक गई।



"अब क्या होगा बीजी?" मैंने उनकी तरफ देखकर पूछा।

"तू घबरा नई पुत्तर ··· मेरे हुंदे गड्डी नई जा सकदी ··· आ मेरे नाल।" और तेज़ कदमों से चलती हुई बीजी ने इंजन ड्राइवर को पुकारा।

"जी, माता जी!" ड्राइवर ने नीचे उतर कर बड़े लिहाज़ से पूछा।

"वे पुत्तर, जिंदा रह," बीजी उसके कंधे पर हाथ फेरने लगी, "ऐ मेरा दोता पप्पू अज धीन पिंड मौसी नू मिलन जा रया वे।"

"तो बैठो ना माता जी डिब्बे के अन्दर ··· गाड़ी बस चलने ही वाली है।" ड्राइवर बोला।

"पुत्तर, गल ते सुन ··· ओ देख ··· ओ नुक्कड़ वाला मेरा घर वे।" हाथ के इशारे से दिखाकर वे बोलीं।

तभी बन्तो और गुड्डी बाहर निकले और हमारी तरफ़ दौड़े। उन्हें देखकर मेरी जान में जान आई।

"ओ देख। गुड्डी, मेरी दोती," बीजी उछलकर पुकारने लगीं, "नीं बन्तो, नीं गुड्डी ··· छेती कर।"

"पर माता जी, मैं सरकारी नौकर हूँ।" ड्राइवर बोला।

"वे कुछ नई हुंदा सरकार नूं," बीजी तपाक से बोलीं, "ए सरकार वी साडी और गड्डी वी साडे वास्ते वे ··· और मेरे वास्ते तू गड्डी दा मालिक ··· रब भला करे तेरा, बस गड्डी दो मिनट होर रोक दे।" फिर साँस लेकर बोलीं, "देख मैं बच्चयाँ दी नानी, ते तेरी वी ते नानी हाँ ··· नानी दा कहना नई मोड़ दे ···।"

"अच्छा माता जी, आप तो बैठो, मैं उनको चढ़ा लूँगा।" ड्राइवर हँस कर बोला।

"जिंदा रह पुत्तर," और बीजी उसकी बलाएँ लेने लगीं।

इतने में गार्ड भी हरी झंडी लिए पास आ गया।

"ड्राइवर जी, हरी झंडी दिखाऊँ?"

बीजी ने उसका हाथ कस कर पकड़ लिया।

"अब क्या है माता जी?" ड्राइवर झुंझला गया।

"ऐ बच्चे वास्ते कुछ खताइयां, बिस्कुट, फल वगैरा दी टोकरी मेरा पुत्तर ल्या रया है।" अभी बीजी ने कहा ही था कि टोकरी पकड़े मामा जी गाड़ी की ओर आते दिखाई पड़े।

"ओ देख," बीजी ने एकदम ड्राइवर का मुँह पकड़ कर घुमा दिया, "ओ मेरा पुत्तर आ रया वे।"

"हाँ, हाँ, देख लिया माता जी, पर अब मैं रुक नहीं सकता।" ड्राइवर ने मुँह छुड़ाते हुए कहा।

बीजी ने ड्राइवर को एकदम कसकर पकड़ लिया, "वे पुत्तर, ऐ ना कर ··· रब दा वास्ता ··· ऐस तरह नानी दी गल ना मोड़, देख, मेरी असीस नाल तैनू बहौत फायदा होएगा।"

"फायदा यह होगा कि मेरी नौकरी चली जाएगी।" ड्राइवर ने खीज कर कहा।

"किंज जाएगी नौकरी," बीजी ने दोनों हाथ कमर पर रखते हुए कहा, "मैं हले जिंदा हाँ ··· कोई हटा के दिखाए ··· तू मैंनूँ दसीं ··· मैं ओदी ऐसी-तैसी फेर देवांगी।"

"ओ तो लग ही रया है," ड्राइवर ने मानो जैसे हार मानते हुए कहा, "आप बैठो ··· जल्दी गाड़ी में बैठो।"

बीजी की बाँछें खिल उठीं, "जिंदा रह पुत्तर ··· जिंदा रह पुत्तर।" और ज़ोर-ज़ोर से उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं और साथ ही चिल्लाईं, "वे मदन ··· छेती आ ··· छेती आ।"

मामा जी किसी तरह हाँफते-हाँफते पहुँच गए।

"हाँ, माता जी," ड्राइवर हाथ जोड़कर बीजी से बोला, "आपका और कोई रिश्तेदार तो नहीं रह गया है ··· उसे भी बुला लो, यह गाड़ी यहाँ से हिलेगी नहीं जब तक आप नहीं बोलेंगी।"

"नई-नई पुत्तर ··· जिंदा रह, रब तैनू पाग लगावे।" बीजी अपने मोती जैसे दाँत निकाल कर ही-ही कर हँस पड़ीं और बोलीं, "हुन पुत्तर ··· बेखटके गड्डी चला ··· चिंता दी कोई गल नई ··· और हाँ पुत्तर, कोई दिक्कत होए ते तू मैंनूँ दसीं।"

"जो हुक्म ··· आप गाड़ी में बैठो।" गार्ड ने हरी झंडी दिखाई और गाड़ी चल पड़ी।

"वाह! आपने तो कमाल ही कर दिया।" आराम से गाड़ी में बैठकर मैंने कहा, "मान गए आपको ··· दो मिनट, बस दो मिनट कर गाड़ी इतनी देर रुकवा दी। नानी हो तो ऐसी।"

बीजी बड़ी देर तक ही-ही कर हँसती रहीं।

ऐसा भी होता है

गीता लाल सहाय

"अपुन पूछता ए यार राजा, तू कोई सपना-वपना नई देखने को माँगता क्या? अक्खा बम्बई सपनों में बसता और तू ए कि ···" दादर पुल के नीचे से गुज़रती ट्रेन के शोर में सोनू की बात अधूरी ही रह गई।

"अपुन पूछता ए यार राजा, तू कोई सपना-वपना नई देखने को माँगता क्या? अक्खा बम्बई सपनों में बसता और तू ए कि ···" दादर पुल के नीचे से गुज़रती ट्रेन के शोर में सोनू की बात अधूरी ही रह गई। राजा गुज़रती ट्रेन को ताकने लगा। पुल पर से ट्रेन को गुज़रती देख राजा को बड़ा अच्छा लगता। उसके गाँव में पुल की बात तो दूर, ट्रेन ही नहीं थी।

सोनू को राजा की यह उत्सुकता समझ में नहीं आई, और आती भी कैसे? दोनों थे नये-नये दोस्त। अभी एक हफ़्ता पहले ही तो राजा अपनी माँ के साथ बम्बई आया है, अपने बीमार बापू के पास। ट्रेन गुज़र चुकी तो सोनू ने राजा की पीठ पर ज़ोरदार धौल जमाते हुए कहा, "क्या ए ··· अपुन सोचता तू ट्रेन में चाकरी कर ले।"

बारह वर्षीय राजा को अपने नये दोस्त का यह मज़ाक बहुत ही घटिया लगा। वह मुँह बिचका कर आगे चल दिया। सोनू ने भी

मुस्कराते हुए देखा और फिर सीटी बजाते हुए उसके साथ हो लिया। रात के आठ बजे भी पुल पर काफ़ी भीड़ थी, लोग तेज़ी से, अपने में मस्त आ-जा रहे थे। किसी को किसी की भी चिन्ता न थी। राजा पुल पर एक कतार से लगे ठेलों को देखते हुए चल रहा था। तभी सामने लुंगी पहने हट्टे-कट्टे आदमी को एक दुबले-पतले, मुरझाए से चेहरे वाले छोटे से लड़के को फटकारते सुना तो दोनों सकपका कर रुक गये।

"··· दुकान लगायेगा ? फूल बेचेगा ? अरे तो बेच, अपुन कब तेरे को मना करे ला। ··· पन भाड़ा निकाल, भाड़ा।" पहलवान दाँत निपोड़ता हुआ उस लड़के को कड़क आवाज़ में धमका रहा था और लड़का चुपचाप बैठा हुआ था, जैसे कि उसे कुछ सुनाई ही न पड़ रहा हो। वह फिर चिल्लाया, "अबे बैहरा ए क्या ?" पहलवान ने उस लड़के को बेरहमी से झकझोड़ा तो सोनू और राजा से रहा न गया।

"चल, उसे बचायें।" सोनू ने राजा की कमीज़ पकड़कर घसीटा।

पहलवान ने सामने पड़ा चमेली के फूलों से भरा ठेला पलट दिया। पल भर में तमाम फूल रेल की पटरी पर बिखर गये। तभी तेज़ी से आती लोकल ट्रेन सुन्दर फूलों को बहुत ही बेदर्दी से रौंदती हुई गुज़र गई। लड़का कुचले हुए फूलों को देख ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। लोग ठिठक गये लेकिन किसी की हिम्मत न हुई कि मदद करने आगे बढ़े।

राजा से देखा न गया। उसकी मुट्ठियाँ भिंच गईं और पैर उठे, लेकिन तभी दादा के कठोर शब्द और सोनू की मज़बूत पकड़ ने रोक लिया। "पैसा नई देने को माँगता। चल भाग और तुम बच्चा लोग सुना," पहलवान ने बच्चों को धमकाया, "जास्ती भेजा नई चाटने का, अपुन का खोली में आकर दान दे, नई तो ···" उसने फूल बेचने वाले लड़के की तरफ़ इशारा किया।

"सोनू, ये किस बात के पैसे माँगता है?" राजा ने पूछा।

"ये ए बम्बई। याँ दादा राज चलता दोस्त तेरा गाँव का माफ़िक नई ···" सोनू ने कहा। तभी पहलवान को अपनी तरफ़ आता देख वह काँपा।

"भाग राजा, नई तो खाली पीली लफ़ड़ा हो जाएँगा।" उसने राजा की बाँह पकड़ी और तेज़ी से दौड़ चला।

दादा ने दोनों को भागते देखा तो लपका, "अबे ए ···" लेकिन तब तक दोनों बहुत दूर निकल चुके थे। दोनों भागते गये। सीधा चाल में पहुँच कर ही दम लिया।

"आज तो बच गया रे।" हाँफते हुए सोनू ने कहा। अंधेरे में उसका पैर खाली पड़े टीन के डिब्बे से जा लगा।

'खन ··· न ··· न।' रात की शून्यता को चीरती हुई ज़ोर से आवाज़ हुई। चाल के दरवाज़े एक-एक कर के खट-खट खुलने लगे। और, इससे पहले कि राजा और सोनू माफ़ी माँगें ऊपर से माँ की आवाज़ सुनाई पड़ी, "राजा ··· राजा!"

राजा को याद आया कि उसे तो घंटे भर पहले ही दवाई लेकर पहुँच जाना चाहिये था। जल्दी से उसने जेब से शीशी निकाली और बुदबुदाया, "बच गये।" शीशी को सही सलामत पाते हुए ऊपर की तरफ़ दौड़ लगाई।

"कहाँ रह गया था? बापू की दवाई लाया?"

माँ के क्रोधित स्वर के आगे राजा एक पल को भूल ही गया कि अभी-अभी वह अपनी जान बचा कर भागा है। जल्दी से दवाई की शीशी माँ के हाथ में रख वह वापस उतरा। उसे सोनू से अभी बहुत कुछ पूछना था।

"सोनू, सोनू!" अंधेरे में सोनू को कहीं न देख उसने आवाज़ लगाई। लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। मिलता भी कैसे? सोनू तो कब का जा चुका था।



हताश-सा राजा वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। उसे बार-बार पहलवान और रोते हुए उस छोटे लड़के की दयनीय शक्ल याद आ रही थी। 'छिः! ये भी कोई शहर है रहने के लिये।' उसने सोचा।

दो दिनों तक राजा बहुत ही उत्सुकता से सोनू का इन्तज़ार करता रहा। सुबह-सुबह सीढ़ियों पर बैठ जाता और टकटकी लगाये सामने देखता रहता। माँ उससे अक्सर कहती कि जा घूम आ, पर वह नहीं हिलता। उसे डर लगता कि कहीं कोई 'बम्बइया दादा' उसे भी न धर दबोचे। वह वहीं सीढ़ियों पर मुँह लटकाये बैठा रहता, सोनू का इन्तज़ार करते हुए।

तीसरे दिन अचानक ही सोनू टपक पड़ा और आते ही उसने फिल्मी अन्दाज़ में शिकायत की, "अबे राजा, तू अपुन से मिलने क्यों नई आया रे?"

"पर कहाँ?" राजा ने भोलेपन से पूछा।

"तेरे को नई मालूम? अक्खा बम्बई जानता सोनू फिल्म स्टार का घर!"

"फिल्म स्टार?" राजा ने हैरानी से पूछा, "... और तू?"

"फोकट में मगज़ मत खा। अच्छा बता," सोनू ने पूछा, "तेरे को शूटिंग देखना माँगता?"

"नहीं।" राजा ने सिर हिलाया।

"तेरे को एक्टर नई बनना क्या?"

"नहीं," राजा ने जवाब दिया, "मैं तो डाक्टर बनूँगा, बापू का इलाज करूँगा ... मैं तो बहुत बड़ा डाक्टर बनूँगा ...।"

"खाली पेट!" सोनू बोला।

इन दो शब्दों से ही राजा के सपने रफ़ूचक्कर हो गये। एकाएक माँ के कहे शब्द याद आ गये। अभी कल ही तो माँ ने बहुत दबे स्वर में कहा था, "अब तुझे बापू की जगह, बापू की फ़ैक्ट्री में काम करना होगा, हमें यहीं बम्बई में ही रहना होगा।" राजा की आँखें भर आईं।

"अबे चल। सपने मत देख।" सोनू ने आग्रह किया, "क्या मालूम तेरा गोटी बैठ जाये। अपुन तो दो साल से रगड़ा खारेला ए, कोई घास इ नई डालता, मालूम।"

"पर ..." राजा अपना हाथ छुड़ाने लगा।

"देख राजा, अपुन तेरे को सच बोलता। फिल्लम में मजूरी करेला तो हो सकता कल को कोई डिरेक्टर अपुन को हीरो का चानस देने का। पर फ़ैक्ट्री में क्या करेगा?" सोनू जाने लगा।

अचानक राजा के मन में उम्मीद की लौ भड़क उठी, 'फिल्मी हीरो! अगर सच में सपना पूरा हो जाये तो!'

"सोनू, सोनू," राजा चिल्लाता हुआ दौड़ा, "अपुन भी चलेगा।" राजा को पहली दफ़ा 'बम्बइया' शब्द का प्रयोग करते देख सोनू का चेहरा खुशी से चमक उठा।

"तू ···?" सोनू को विश्वास ही नहीं हो पा रहा था।

"हाँ ··· अपुन।" राजा ने दोहराया और बड़े ही आत्मविश्वास के साथ अपने दोस्त के गले में बाँहें डाल दीं। सोनू ने भी अपने नये दोस्त के गले में बाँहें डालीं और फिर धीरे-धीरे फिल्मी धुन गुनगुनाते हुए, दोनों फिल्म स्टूडियो के समीप पहुँचे।

दरबान ने सोनू को देखा तो दूर से ही चिल्लाया, "आ गया तू मगज़ मारने!"

"आज तो अपुन को अन्दर जाने दे न सेठ। ये दोस्त ··· अपुन का।" सोनू ने बहुत ही विनम्रता से कहा। दरबान ने राजा को ऊपर से नीचे तक आश्चर्य से देखा।

"कौन ए?"

"अपुन का दोस्त। गाँव से आएला।" सोनू ने झट कहा। तभी गाड़ी का हार्न सुन दरबान गेट खोलने भागा।

"देख-देख, प्रोड्यूसर घई। बड़ी-बड़ी फिल्लम बनाता है।" सोनू धीरे से बोला।

गाड़ी के आधे खुले शीशे से राजा ने दो आँखों को अपनी तरफ़ घूरते पाया। दोनों सकपकाये। डर लगा कि दरबान दोनों को भगा न दे। लेकिन दरबान ने ऐसा कुछ नहीं किया। गाड़ी चली गई तो वह भी उनके पास आकर बैठ गया।

राजा और सोनू वहीं गेट के बगल में दिनभर बैठे अपने मनपसन्द हीरो-हीरोइन को मोहित हो आते-जाते निहारते रहे। दरबान भी बीच-बीच में फिल्म स्टारों के किस्से-कहानी सुना कर उनका खाली पेट हँसी से भरता रहा। दिन ढलने को हुआ तो दोनों निराश वापस चल दिये। आज तो किसी ने उनको नहीं पूछा।

"कल को फिर आने का। अपुन भी आयेगा, नई दरबान बाबा!" दरबान ने प्यार से सोनू की पीठ थपथपाई। अब राजा रोज़-रोज़ स्टूडियो का चक्कर लगाने लगा। हीरो बनने की उम्मीद उसी

चकाचौंध में नज़र आने लगी। अब तो उसे बम्बई से प्यार भी हो चला था। वह रोज़ सुबह सोनू के साथ जाने के लिये एक घंटा पहले ही तैयार हो जाता। बीमार बापू और माँ यह सोच-सोच खुश होते कि उनका लाड़ला काम पर जा रहा है।

"माँ, मैं फ़ैक्ट्री जा रहा हूँ।" राजा दूर से ही आवाज़ लगाता हुआ निकल जाता।

"कितना बदल गया है, हमारा राजा।" माँ उसकी बड़ाई करती हुई अपने पति से कहती। और सच, बदल तो गया था राजा। रोज़ झूठ बोल वह सोनू के साथ फिल्म स्टूडियो के बाहर बैठा रहता, अपने सपने सच करने की उम्मीद में, और क्यों न हो? सोनू ने राजा को फिल्म स्टार बनने के सपने देखना जो सिखा दिया था। अब तो वह अपने आप को किसी फिल्म स्टार से कम नहीं समझता। घंटों शीशे के सामने खड़ा हो कभी अनिल कपूर, कभी आमिर खान, तो कभी संजय दत्त की नकल करता रहता।

एक महीना कब बीत गया, उसे पता भी नहीं चला। चला तो केवल उसकी माँ को। महीने की पहली तारीख को जब राजा ने माँ की हथेली पर कुछ भी नहीं रखा तो खोली में भूचाल ही आ गया। पहली दफ़ा वह माँ के हाथों खूब पिटा। फिर भी वह सपने देखता गया – देखता गया।

"अरे कहीं काम कर। तू क्यों नहीं समझता बेटा कि अब इस बुढ़ापे में बस तेरा ही सहारा है। अपने बापू की हालत तो देख रहा है न ···" इतना कहते-कहते माँ की आँखें भर आईं।

राजा उसकी बात सुनी-अनसुनी कर सीधा अपने दोस्त सोनू के पास पहुँचा। लेकिन सोनू उस दिन कुछ उदास था।

"चल सोनू, दस बज गये।" राजा ने उदास बैठे सोनू से कहा।

सोनू ने कोई उत्सुकता प्रकट नहीं की। वह वहीं बुत-सा चारपाई पर बैठा रहा।

"क्या यार ···" राजा ने उसे चारपाई से उठाना चाहा।

"छोड़!" सोनू चिल्लाया। राजा सहम गया।

"अब नई। इस लफ़ड़ा में कुछ नई, अपुन दो साल से खाली पीली सपना देख रेला। सब बेकार ··· खल्लास। कचरा ओ गया अपुन। वो देख ··· देख," अन्दर से किसी के खाँसने की आवाज़ आई। बोझिल स्वर में सोनू ने कहा, "अपुन की माँ काम कर-कर के बीमार पड़ गएला। बौत दुख दिया रे अपुन। पन अब नई। अब अपुन भी काम करेला। दादर पुल पर ठेला लगायेगा ···" इतना कहते हुए सोनू रोने लगा।

राजा से वहाँ ठहरा न गया। सोनू ने एक ही झटके में राजा की आँखें खोल दीं। उसने भी निश्चय किया कि वह वापस लौट जायेगा। बापू की सेवा करेगा और ··· और ···। अपने आपसे न जाने क्या-क्या वायदा करता हुआ चला जा रहा था कि तभी पीछे से ज़ोरदार हार्न ने उसकी तन्मयता को तोड़ा।

"देखने का नई क्या? ···" ड्राइवर ने डाँटते हुए कहा।

इससे पहले कि वह जवाब दे, पीछे बैठे आदमी ने ड्राइवर को फटकारा, "ड्राइवर, बच्चों से ऐसे बोला जाता है?"

राजा की नज़र पीछे सीट पर गई तो हैरान रह गया। "प्रमोद घई!" राजा के मुँह से निकल पड़ा। वही प्रोड्यूसर प्रमोद घई।

घई साहब ने मुस्कराते हुए उसे अपने नज़दीक बुलाया।

"स्टूडियो जाने को है?" राजा हैरान-सा खड़ा था। घई साहब ने ही उसकी शंका का समाधान किया, "अरे दोस्त, मैं वही हूँ जिसे तुम रोज़ स्टूडियो में जाते देखते हो। आज तुम्हारा दोस्त दिखाई नहीं पड़ता। बीमार है क्या?"

राजा चुप था। इतने बड़े आदमी से क्या बोले?

"अच्छा, आओ कार में बैठो। स्टूडियो जाने को है? आओ आओ न ···"

राजा कुछ समझ नहीं सका, वह चुपचाप कार में जा बैठा।

"ड्राइवर, चलो!"

और, कार फुर्र ··· से आगे चल दी। घई साहब बार-बार उसे आँख के कोने से देखते, लेकिन राजा बेजान-सा शीशे से बाहर देखता रहा।

'क्री ··· ई ··· ई ··· च ···' एकाएक ड्राइवर ने ब्रेक लगाया। राजा का सिर शीशे में लगते-लगते बचा।

"क्या हुआ?" घई साहब ने पूछा।

"आगे ··· वो देखता साब ··· आगे गणपति जुलूस जा रेला साब। टेम लगने को माँगता।" ड्राइवर उतर गया।

'गणपति बप्पा मौरया' गाता हुआ जुलूस और भी नज़दीक आ गया। घई साहब ने राजा को देखा और पूछा, "क्या बात है? आज उदास दिख रहे हो। दोस्त नहीं है इसलिये!"

राजा फिर भी चुप रहा।

घई साहब ने पूछा, "नौकरी करेगा?"

राजा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने चौंककर कहा, "जी?"

"मैंने पूछा, काम करोगे? स्टूडियो का स्पॅाट बॉय एकाएक गाँव लौट गया। हमें सख्त ज़रूरत है।" राजा मुँह बाए देखता रहा, फिर धीरे से सिर हिलाते-हिलाते रुक गया, "न ··· नहीं।"

"क्यों? क्या हुआ?" चौंकते हुए घई साहब ने पूछा।

"मेरा ··· अपुन का दोस्त भी है न।"

घई साहब ठहाका लगा ज़ोर से हँस पड़े, "तो उसे भी ले आ न।"

"सच?" राजा को जैसे विश्वास ही न हुआ हो।

"पर तुम दोनों को मेरी एक बात माननी होगी।" घई साहब लम्बी साँस लेते हुए बोले।



राजा की तो साँस ही रुक गई, "जी, क्या?"

"तुम दोनों शाम को केवल दो घंटे मेरे साथ काम करोगे और बाकी समय दिन में पढ़ाई, बोलो मंज़ूर?"

राजा खुशी से चहक उठा। "जी साब!" और, कार का दरवाज़ा खोल वह नाचते, 'गणपति बप्पा मौरया' गाते हुये जुलूस में शामिल हो गया। उसे लगा जैसे बम्बई ने उसे अपना लिया।

सच, बम्बई सच में सपनों की नगरी है। हीरो नहीं बना तो क्या, नौकरी तो मिल गई और प्रोड्यूसर साब ने पढ़ने को भी कहा था। अब डाक्टर बनने का सपना तो पूरा कर सकेगा।



ननकू

मंजू मधुकर

"दिदिया गे, गोइठा मत थोप, घाम ना निकलतई चार दिन तक फिर सुखतई कइसे? हमर मान तो, इ सब गोबर मिट्टी में गाड़ देहीं, खाद बन जइतो।" ननकू ने अपनी उत्तम सलाह पर दिदिया से एक धौल खाया।

"रे ननकुआ, आज इसकूल ना जबहीं रे?" अम्मा ने पूछा।

"ना अम्मा, पाठशाला तक गंगा के पानी चढ़ अलई हे।" ननकू ने चिल्ला कर कहा और उसे गुस्सा भी आया कि अम्मा को पता है कि कल से गंगा का पानी लगातार चढ़ रहा है, फिर भी पूछे बिना मानेगी नहीं कि स्कूल क्यों नहीं जा रहे। अरे, स्कूल तो गाँव के सबसे निचले हिस्से में है, जहाँ हर साल सावन-भादों में बाढ़ का पानी चढ़ आता है।

बरसात का महीना ननकू को बहुत प्रिय है। आम-जामुन के पेड़ पर चढ़ना और गुल्ली-डंडा खेलना उसे अच्छा लगता है। खेलते-खेलते दूर निकल जाता है, मगर पीपल तले नहीं जाता और न पीपल के पेड़ पर चढ़ता है क्योंकि ललमुनियाँ की दादी बोल रही थी कि पीपल पर 'परेत' का बास है। पर उस दिन मास्टर जी पाठशाला में पढ़ा रहे थे कि यह सब कुछ नहीं होता, तब से ननकू का डर कुछ

कम हो गया। अब रात में मैदान (शौच) जाना पड़ता है तो अकेला ही लोटा लेकर दूर चल देता है, दिदिया या अम्मा को नहीं पुकारता।

उसका बापू तो कभी रहता नहीं, पटना शहर में रिक्शा जो चलाता है। एक बार हो आया है पटना भी, देख लिया 'कइसा' होता है शहर। बड़े-बड़े महल जैसे मकान, चिकनी-चौड़ी सड़कें, रंग-बिरंगी चीज़ें और एक जगह ले गया था बापू। 'क्या कहते हैं उसको?' ननकू को क्षण भर लगा सोचने में। अरे, चिड़िया घर कहते हैं, जहाँ खुले में जानवर घूम रहे थे। उसने तो बापू की उंगली ज़ोर से पकड़ ली थी, 'कहीं उसे खा जाते तो।' सोच कर उसे हँसी आयी। तब ननकू छोटा था, इसीलिए डर गया। अब बड़ा हो गया है। अम्मा कहती है कि पाँच प्राणी हैं इस घर में, उसे ही तो सबको देखना है। चाहे बच्चा ही है, पर है तो बहादुर बच्चा।

ननकू अपनी धुन में मस्त, गुल्ली-डंडा उछालता, गाँव की छोटी पगडंडी पर सरपट दौड़ा चला जा रहा था। इतने में उसे आवाज़ सुनाई दी, "ननकू रे, रे ननकू।" उसे लगा कि कोई दूर से पुकार रहा है। पलट कर देखा तो दिदिया हाथ हिला-हिला कर उसे बुला रही थी। ननकू के जी में आया कि अनदेखा करके निकल जाए। फिर सोचा कि देख ही आवें क्या बात है? वरना अम्मा से जाकर दस शिकायतें करेगी, जिसमें आधी तो पुरानी होंगी, जिनके लिए कई बार वह झिड़की भी खा चुका होगा।

खैर, सोचता हुआ ननकू पास जा पहुँचा। देखा, दिदिया दोनों हाथ में गोबर लपेटे खड़ी है। बोली, "रे ननकुआ, हालि से गोइठा थपवा देहीं रे, बड़ा ज़ोर से पानी पड़ेला हई।" ननकू ने आकाश की तरफ़ आँखें उठा कर देखा तो पाया कि चारों ओर काले घनघोर बादल छाये हुए हैं, मानो गंगा मइया धरती से उठकर फिर आकाश में चली गयी हो और बड़े वेग से गिरने वाली हो।



उसने दीदी को सलाह दी, "दिदिया गे, गोइठा मत थोप, घाम ना निकलतई चार दिन तक फिर सुखतई कइसे? हमर मान तो, इ सब गोबर मिट्टी में गाड़ देहीं, खाद बन जइतो।" ननकू ने अपनी उत्तम सलाह पर दिदिया से एक धौल खाया। खैर, इतने सुहावने मौसम में बड़े बेमन से वह गोइठा थापने बैठा।

दो-चार ही गोइठा थापा होगा कि टिप-टिप-टिप पानी बरसने लगा। दिदिया गोबर की टोकरी दीवार की ओट में रख आयी और

हाथ धोने चली गयी। ननकू ने प्रसन्नतापूर्वक बादलों को देखा जिनकी नन्ही-नन्ही बूँदें उसको इस बेगारी से छुटकारा दिलाने आयी थीं। कुएँ पर हाथ धोने के बाद, दिदिया ने इशारे से उसे भी बुलाया और किसना की चाची से बाल्टी भर पानी माँग कर ननकू का हाथ धुलाने लगी। फिर बोली, "सीधा घर जइहें रे, लगहई ज़ोर से पानी पड़तई। बाबा नीम तले बइठल होतई। जो, चल जाहीं हालि-हालि घर, समझलें रे।"

समझ गया ननकू, अम्मा के काम से छुटकारा मिल भी जाए पर दिदिया नहीं छोड़ने वाली। मास्टर साहब से भी ज़्यादा सख्त है। मास्टर साहब की याद के साथ ही स्कूल की याद कौंध गयी और फिर दिदिया की एक प्यारी-सी छवि याद आई। ननकू थका-माँदा घर आता, दिदिया कहीं भी रहेगी दौड़ी चली आएगी, और कटोरा भर भात रख देगी सामने। फिर बड़े प्यार से सिर पर हाथ फेरते हुए कहेगी, "खा ले बबुआ, हमार भइया बड़ा होइके पटना के बाबू बनतई, राजा बनतई।"

राजा बनने की कल्पना से ही ननकू को हँसी आ गयी, 'भला सिर पर मुकुट रख कर कोई गिल्ली-डंडा खेल सकता है या पतंग उड़ा सकता है?' पटना का बाबू भी नहीं बनना चाहता वह। शहर में कितनी भीड़-भाड़ रहती है और कैसे भूल-भुलैया वाले रास्ते। सबसे अच्छा गाँव है। पर दिदिया इस बात को नहीं समझेगी। कभी शहर गयी हो तब न।

सोचते-सोचते ननकू अपने घर के सामने नीम के पेड़ तक पहुँच गया जहाँ उसके बाबा खटोले पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। पास जाकर ननकू ने बाबा से कहा, "बाबा घर के भीतर चलअ, ज़ोर से पानी पड़तई।"

"के हई? ननकू बचवा। अरे, हम तो केत्ता देरी से बइठल हइली। तू ही तो हमरे बुढ़ापे की लाठी हव, आउर अंधेरे का

दीपक।" हुलस कर बाबा ने उसे पकड़ लिया और उठने लगे।

कुछ दिनों से बाबा को दिखाई नहीं देता। अम्मा कहती है कि आँख में सफ़ेदी आ गयी है। शहर जाना पड़ेगा इलाज कराने और चश्मा लेने, फिर दिखने लगेगा। ननकू ने बाबा को कोठरी में पहुँचाया, खटोले को दलान में खड़ा किया। अब क्या करे, पानी तो ज़ोर से पड़ने लगा। घर से बाहर निकलना मुश्किल। वह दादी की शरण में चला गया। जब तक पानी बरसेगा, किस्से-कहानियों से ही दिल बहलाया जाए।

दादी उस समय रसोईघर में भात पका रही थी। ननकू एक पीढ़ा खींच कर दादी के पास बैठ गया और प्यार से बोला, "गे दादी, राम जी कअ किस्सा सुनाहीं ना।"

"अरे, ननकू बचवा, तोर दिदिया आउर अम्मा कहाँ रह गेलयून रे, इ बरसात में। इ बार कवन नछत्तर में पानी पड़े लगलई, छुटते ना हई।" दादी फिर बोली, "सब इन्दर भगवान के परकोप है। अइसन बरसात आउर गंगा मइया में समुंदर जइसन उफान तो हम कब्बी ना देखले ही ला। गंगा मइया पीपल तक चढ़ अलयून है, आउर सुनली है, ओने सोन नदी भी बढ़ रहली है।"

ननकू रसोईघर से निकला और तेज़ी से पीपल के पेड़ की ओर भागा। ललमुनियाँ की झोपड़ी वहीं थी और उसके कई संगी-साथी उधर ही रहते थे। लोग अपना-अपना सामान उठा कर झोपड़ी की छत पर रख रहे थे और गाय-भैंस को पटना जाने वाली सड़क के किनारे बाँध रहे थे, क्योंकि उससे ऊँची जगह और कोई नहीं थी। ननकू ललमुनियाँ की झोपड़ी में घुस गया, देखा उसकी दादी और अम्मा सामान उठाने में लगी हुई थीं। पानी थोड़ा दूर था। ननकू भी उनकी सहायता करने लगा।

सारा सामान उठते-उठाते पानी झोपड़ी के अन्दर घुटने तक आ गया। सामान से भरी टोकरी सिर पर रखकर जब वह बाहर निकला

तो पाया, चारों ओर पानी फैल गया है और बड़ी तेज़ी से उसके घर की तरफ़ भी बढ़ रहा है। ननकू ने टोकरी सिर पर से उतार कर नीचे रखी और दौड़ पड़ा अपने घर की ओर।

दादी देखते ही बोली, "कहँवा चल गेलही हल रे? चल दू कौर माड़-भात खा लेहीं, आउर समान उठाहीं।"

पूरे टोले में हड़बड़ाहट मची हुई थी। लोग थोड़ा बहुत सामान लेकर जैसे-तैसे सड़क की तरफ़ भाग रहे थे। बारिश इतनी ज़ोर से हो रही थी कि भरी दुपहरिया में अंधेरा छाने लगा था।

कोठरी में जाकर ननकू अंधेरे में ही जैसे-तैसे सामान बटोर-बटोर कर टोकरी में रखने लगा। जब टोकरी सिर पर रख कर बाहर निकला तो देखा कि आंगन में छाती भर पानी चढ़ आया है। दालान में भी घुटने भर पानी है और बाबा खटिया पर खड़े-खड़े चिल्ला रहे हैं। अम्मा, दादी, दिदिया का कहीं पता नहीं था। ननकू ने झट टोकरी पानी में फेंकी और बाबा की तरफ़ लपका, जल्दी से उनको खटिया से नीचे उतारा।

बाबा बहुत घबराए थे। उन्होंने ननकू से कहा, "हालि कर रे बेटवा, चल पटना के सड़क पर।"

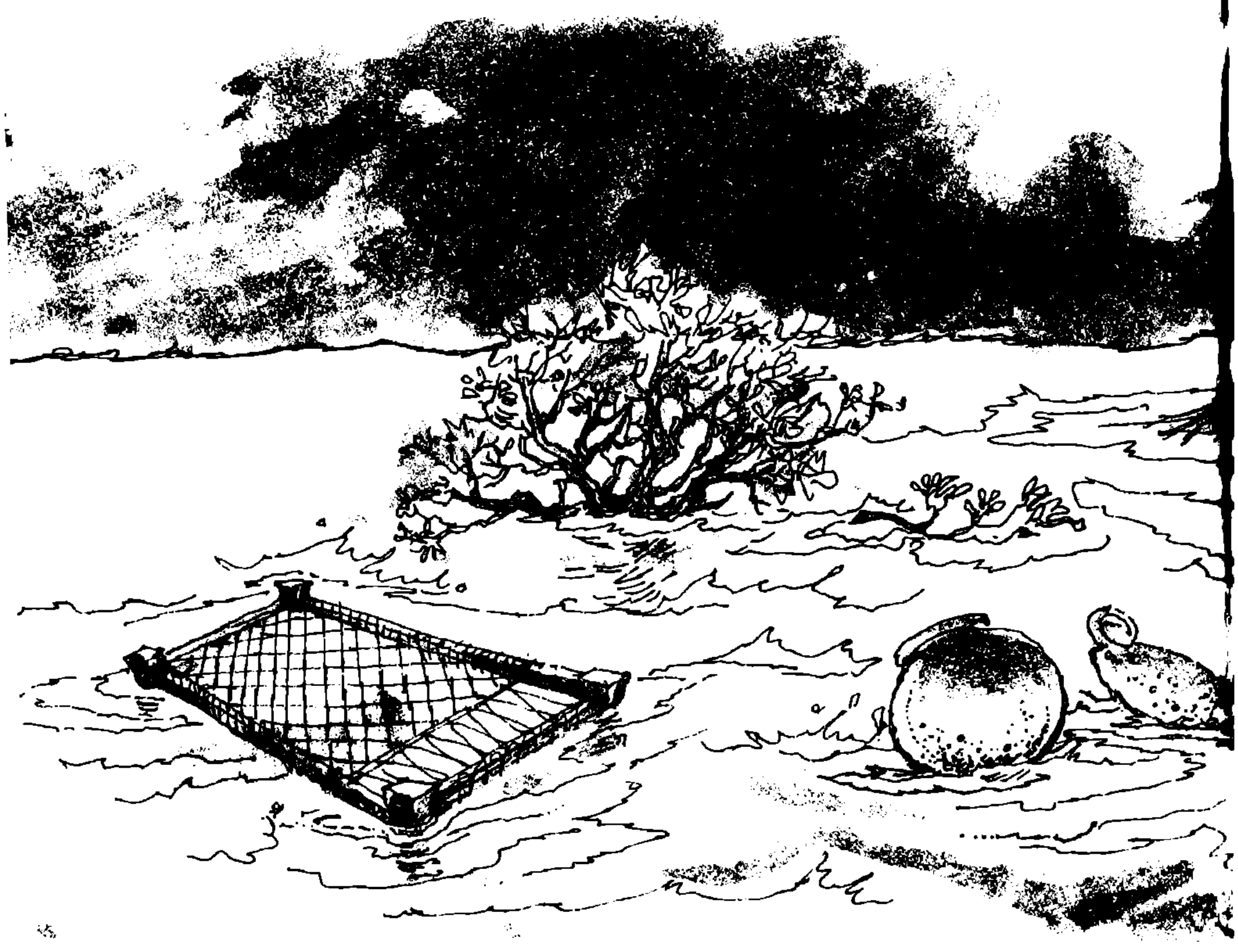
ननकू दालान के दरवाज़े तक आया परन्तु यह क्या? उसे लगा कि गाँव में नहीं गंगा की बीच धार में खड़ा है वह। अब क्या करें, गाँव का ही पता नहीं था। किसी-किसी के घर का छप्पर भर दिख रहा था। पानी उसकी छाती को छूने लगा था। अब तो आंगन पार कर कोठरी में भी नहीं जा सकता। अब क्या होगा? ननकू को रोना आने लगा। अगर अकेला होता तो शायद फुक्का मारकर रोने लगता, परन्तु बाबा का ध्यान आते ही लगा कि इन पाँच प्राणियों के घर में तो वही एक बहादुर बच्चा है, उसे बाबा को बचाना होगा।

बस, उसने आव देखा न ताव, झट रसोईघर के छप्पर पर चढ़ गया। रसोईघर दालान से लगा हुआ था और उसका छप्पर नीचे

पड़ता था, पूरा ज़ोर लगाकर उसने बाबा को ऊपर खींचा। बाबा भी खटिया का सहारा लेकर ऊपर आ गए। अभी वे लोग ऊपर पहुँच कर संभले भी न थे कि घर की दीवारें ढह गयीं और छप्पर पानी की धार में तिनके-सा बहने लगा। ननकू और बाबा ने छप्पर ज़ोर से पकड़ लिए।

काली बदरी के कारण चारों ओर घुप्प अंधेरा छाया हुआ था। ननकू को कुछ नहीं दिख रहा था। बस, अथाह पानी ही पानी। बाबा ऐसे चुप थे मानो हैं ही नहीं। ननकू ने उन्हें ज़रा छूकर देखा, बाबा ने कुछ कहा, क्या कहा, ननकू की समझ में नहीं आया।

दूर काले बादलों के पार रोशनी की एक लकीर-सी दिखी। फिर अंधेरा कुछ छँटने लगा और ननकू ने देखा कि वह गंगा की बीच धारा में बहा जा रहा है। उसके आस-पास टूटे पेड़, झोपड़ी के



छप्पर, आदमी तथा जानवर, सब कुछ गंगा मइया की गोद में बड़े वेग से बहे जा रहे हैं।

फिर उसे महल जैसे ऊँचे-ऊँचे घर दिखने लगे और वह समझ गया कि वह पटना शहर के पास बह रहा है। पटना शहर को देखकर उसको थोड़ा ढाढ़स बँधा, किनारे पर खड़े लोगों को वह हाथ हिला-हिलाकर इशारा करने लगा। दो-चार लोग नाव लेकर बढ़े भी परन्तु बीच धार तक आना कठिन था। ननकू का छप्पर आगे निकल गया। तभी गंगा का विशाल पुल दिखा। पुल पर अनगिनत लोग खड़े थे। ननकू सोच में डूबा था कि कैसे बचा जाए। तभी उसकी नज़र छप्पर पर पड़ी हुई रस्सी पर गई। ननकू ने झटपट उसका एक सिरा छप्पर के बाँस में बाँधा और चिल्ला कर बोला, "बाबा, कसकर पकड़ लिहअ।"



पुल और पास आ गया। जैसे ही वे पुल के नीचे पहुँचे, ननकू ने रस्सी के दूसरे सिरे को घुमाकर बड़े वेग से ऊपर पुल पर फेंका। पुल पर खड़े लोगों ने उसे थाम लिया। छप्पर एक झटके के साथ पुल के पाये से लगकर रुक गया।

ननकू रस्सी को पकड़े था और बाबा ननकू को। इतने में कुछ लोग नाव लेकर आ गए। नाव से वे घाट पर पहुँचे। घाट पर भीड़ इकट्ठी हो गई थी।

लोग एक नन्हे बच्चे के साहस और सूझबूझ को बड़े आश्चर्य से देख रहे थे। बाबा लस्त-पस्त पड़ गए, परन्तु ननकू को एक नया जीवन मिल गया था। वह अदम्य उत्साह से पूर्ण था। उसने किसी तरह अपने बापू को खोज निकालना चाहा। उसे अपने बापू का पता मालूम था। खोजते-खोजते आखिर उनका झोपड़ा भी मिल गया किन्तु वे वहाँ नहीं थे। बाढ़ की खबर सुन कर वह गाँव चले गए थे। बगल में ही जवाहर चाचा का झोपड़ा था। दोनों जवाहर चाचा के पास गए। उन्होंने खुशी-खुशी उन दोनों को अपने यहाँ ही ठहराया। ननकू और उसके बाबा चार दिन तक वहाँ टिके रहे और जब गंगा का पानी उतरने लगा तो ननकू जवाहर चाचा के साथ गाँव की ओर चल पड़ा।

गाँव में अभी भी पानी भरा हुआ था। कितने मानुष-मवेशी बह गये, कुछ पता नहीं। परन्तु ननकू का परिवार पटना जाने वाली सड़क पर अपने प्राण बचा कर सुरक्षित पड़ा हुआ था।

पहले-पहल दिदिया मिली और वह ननकू से लिपट कर फुक्का मार-मार कर रोने लगी। गाँव भर के लोग इकट्ठे हो गये, पर अम्मा ··· अम्मा कहाँ थी ?

"अम्मा कहाँ है ?" ननकू के पूछने पर दिदिया को होश आया और उसने इशारे से अम्मा को दिखाया। वह सूनी आँखों से टकटकी लगाए बाढ़ के पानी में न जाने क्या देख रही थी। जब ननकू जाकर

उसकी गोद में बैठा तो दहाड़ मार कर रोने लगी और तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं में न मालूम किस-किस का नाम लेकर उन्हें प्रणाम करने लगी।

बाद में ननकू को पता चला कि उसके साहस का समाचार दिल्ली तक पहुँच गया है और 'परसिडेंट' से उसको कुछ इनाम भी मिलने वाला है। ननकू मारे खुशी के झूम उठा। उसने प्रण किया कि भविष्य में और अधिक साहस का काम करेगा। घर-परिवार, गाँव वालों को उसपर गर्व था।

खिलवाड़

राजेन्द्र कुमार राजीव

"तुम्हारा ब्याह किससे हो रहा है?"
"म्हने पतो कोई णीं।" कह कर वह तेजी से वहाँ से भाग गई। रात में शादी की रस्में पूरी कर दी गईं और भोर होते ही नन्ही दुल्हन विदा हो गई।

बहुत खुश थी शांता, आठ-नौ बरस की शांता। उसकी आज शादी थी। मैं हैरान था। इतनी छोटी लड़की का विवाह? बड़ा अजीब लग रहा था मुझे। पहली बार जो देखा था। मैंने सोचा, दूल्हा भी तेरह-चौदह के आस-पास का ही होगा। क्या करता होगा वह? कितना पढ़ा-लिखा होगा?

मेरी बहन नीना को भी यह सब बड़ा अजीब-सा लग रहा था। "भैया, यह तो गुड्डे-गुड़िया की शादी जैसा लगता है।" वह कुछ सोचते हुए बोली।

ठीक ही कह रही थी वह, मैंने सोचा। शांता भी गुड़िए जैसी सजी है। वह खुश केवल इसलिए है कि उसे नए-नए, रंग-बिरंगे कपड़े मिल रहे हैं। चमचमाते गहने शरीर पर पड़े हैं। लाल-हरी चूड़ियाँ हाथों में खनक रही हैं। पैरों में पायलों की रुनझुन है। खाने के लिये ढेर सारी मिठाइयाँ और पकवान हैं। बस!

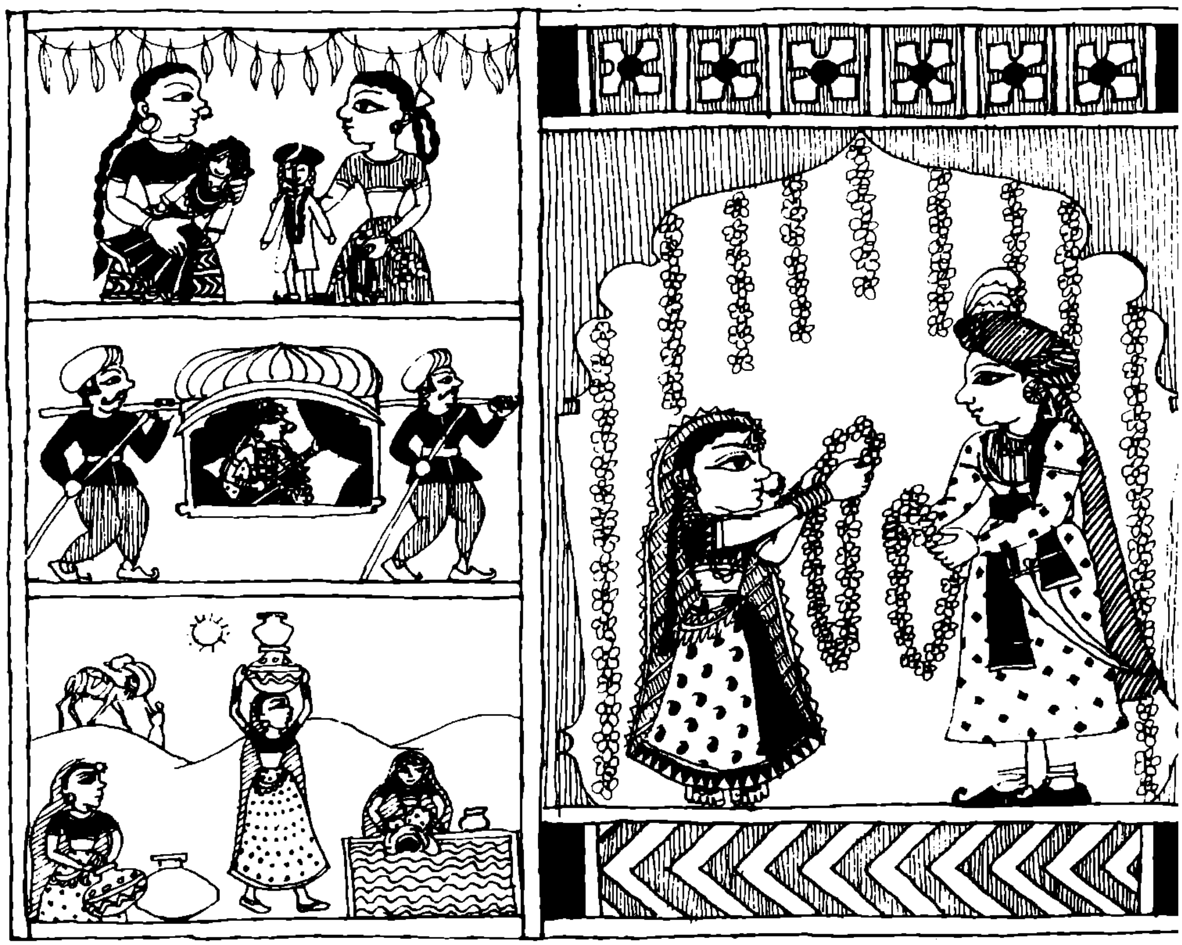
मेरे मन में राजस्थान देखने की इच्छा बहुत दिनों से थी। इस बार मम्मी-पापा ने मुझे और नीना को राजस्थान घूमने की इजाज़त दे ही दी। कारण, हमारे साथ जाने के लिये पापा को जोरावर सिंह जो मिल गये थे। हम उन्हें जोरावर चाचा कहते थे। वे ठेठ राजस्थान के थे। सिर पर लाल, चौड़ी पगड़ी, चेहरे पर झबरीली दाढ़ी-मूँछें,

शरीर पर अंगरखा और धोती में चाचा खूब फबते। राजस्थान के बारे में उनसे और भी पता चला। झीलों की नगरी उदयपुर की निराली छटा, भारत का पेरिस कहलाने वाला नगर जयपुर और वहाँ की वेधशाला तथा हवामहल, अजमेर और पुष्कर की प्राकृतिक छटा, आबू पर्वत के मनोरम दृश्य, मंदिर और नक्की झील, चित्तौड़गढ़ का विजय-स्तम्भ, इसके अलावा जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, भरतपुर, अलवर और बूंदी के दुर्ग-देवालय तथा राजमहलों के वैभव – सबके वर्णन ने नीना और मेरा मन मोह लिया।

बाजरे की रोटी, सांगरा का साग और राबड़ी-रोटी तथा अन्य स्वादिष्ट व्यंजनों के चटखारे लेते हम जोरावर चाचा के साथ जगह-जगह घूमे। उन दिनों वहाँ 'आखा तीज' का उत्सव चारों ओर धूमधाम से मनाया जा रहा था। जोरावर चाचा ने चार-पाँच दिन अपने गाँव में ही रहने का निश्चय किया, ताकि हम भी इस उत्सव का आनंद ले सकें।

घाघरा, काँचली और ओढ़नी की सतरंगी छटा में सजी युवतियों को मस्त होकर संगीत की तेज लय में ढोलक और तबले की थाप पर नाचते देख हमारा भी मन झूम उठा। घूमर, झूमर, नेजा, बालर, गेर और मवाई लोक-नृत्य को देख हमारे पैर भी थिरकने लगे।

तभी हमें जोरावर चाचा की भतीजी शांता के विवाह का निमंत्रण मिला। दुल्हन को देख हम दोनों चौंक गये। अरे, यह तो एक छोटी-सी लड़की थी! चाचा ने बताया कि बाल-विवाह राजस्थान में आम बात है।



नीना और मैं हैरान थे। जोरावर चाचा ने हमारे पास आकर पूछा, "कहो बेटे, राजस्थानी शादी देख तुम्हें मज़ा नहीं आ रहा क्या? तुमलोग किस सोच में डूब गये?"

"मज़ा तो आ रहा है," नीना बोली, "परन्तु यह शांता तो बहुत छोटी है। यह पढ़ती नहीं है क्या? क्या स्कूल नहीं जाती है? और चाचा, मैंने पढ़ा था कि कानून में अठारह वर्ष की लड़की और इक्कीस वर्ष के लड़के की शादी वैध मानी जाती है।"

"बात तो साच्ची पण, बेटी, पर कराँ कांई? यहाँ उसकी किसे परवाह? यहाँ तो आखा तीज के शुभ अवसर पर हजारों बाल-विवाह होते हैं।"

"हजारों?" सुनकर हम दोनों चकित हो गये।

"हाँ, यहाँ के लोग सोचते हैं कि बेटी को किशोरावस्था के आते-आते ही घर से विदा कर देना चाहिये, नहीं तो माँ-बाप पाप के भागीदार होते हैं। म्हने भी बुरै तो लगै पण ईको कोई इलाज नाँ ···।" चाचा ने समझाया।

विज्ञान के इस युग में यह कैसी विचारधारा? अंधविश्वास में अपने बच्चों पर अत्याचार? बड़ा होना सिखाने के पहले ही घर से भगा दो – यह कैसा खिलवाड़ है?

तभी शांता अपने रंग-बिरंगे कपड़ों में सजी-धजी भागती आई। नीना ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और प्यार से पूछा, "शांता, जानती हो आज तुम्हारे घर क्या हो रहा है?"

शांता खिलखिला कर हँसी, बोली, "म्हारे ब्याह होई रहया है।"

"ब्याह का क्या मतलब है?" नीना ने पूछा।

"अच्छी-अच्छी चुनरिया-घाघरा मिलसी, सोने-चांदी र गहनें, रंग-बिरंगी चूड़ियाँ और घणी सारी मिठाई ···· और ···।" शांता ने भोले भाव से गिनाया।

"और?" नीना ने पूछा।

"और कांई बस! उणकै बाद क्या ··· बस ···!"

"तुम्हारा ब्याह किससे हो रहा है?"

"म्हने पतो कोई णीं।" कह कर वह तेजी से वहाँ से भाग गई। रात में शादी की रस्में पूरी कर दी गईं और भोर होते ही नन्ही दुल्हन विदा हो गई।

नीना और मेरा मन कुछ उखड़-सा गया। छुट्टी का सारा मज़ा फीका हो गया।

अचानक एक दिन नीना एक लड़की को साथ लेकर आई और बताने लगी, "गाँव की इस लड़की का नाम शारदा है। ग्यारह वर्ष की है। दो किलोमीटर दूर जाती है पानी लेने। रोज छह चक्कर लगाती है इस काम के लिये।"

छोटी-सी शारदा को देख कर मन और उदास हो गया। उसकी भी शादी हो चुकी थी। और, अब वह ससुराल में सारा दिन काम की चक्की में जुटी रहती थी।

"चाकलेट खाओगी?" जेब में पड़े चाकलेट देते हुए मैंने उससे पूछा, "और क्या-क्या काम करती हो?"

"चौका-बरतन, ढोरों को चारा देना, घर लीपना ···।" सहमती-सकुचाती शारदा बोली।

"जानते हो, इसकी शादी किससे हुई है?" नीना ने बीच में टोका और मुझसे कहा, "अट्ठाईस वर्ष के एक आदमी से जो दिन भर अफ़ीम के नशे में धुत रहता है। बिचारी को दो-दो, तीन-तीन घंटे उसके हाथ-पाँव दबाने पड़ते हैं। कभी-कभी दो-चार थप्पड़ भी जड़ देता है इसे वह बदमाश! हमेशा इसे गाली देकर ही बात करता है वह दुष्ट!"

नीना का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। मैं सुन कर चुप रहा पर अंदर ही अंदर मन बौखला उठा। कैसे माता-पिता थे जिन्होंने एक छोटी-सी लडकी को ऐसे पुरुष से बाँध दिया? क्या मानवता लेश मात्र भी नहीं थी उनमें? रात भर मुझे नींद नहीं आई। शारदा और छोटी-सी सजी-धजी गुड़िया शांता का चेहरा बार-बार सामने आता रहा। पता नहीं कब फिर नींद आ गई। भोर होते ही शोरगुल सुन आँखें खुलीं। पड़ोस में कोहराम मचा था।

"नीना-नीना!" मैंने नीना को झकझोर कर उठाया।

"क्या हुआ, भैया?" वह हड़बड़ा कर उठ बैठी।

"देखो तो, कहीं से रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आ रही हैं। जोरावर चाचा और चाची की चारपाइयाँ भी खाली पड़ी हैं। लगता है कुछ हुआ है।"

नीना भाग कर बाहर गई। मैं जल्दी-जल्दी कमीज़ पहनने लगा। तभी नीना वापस आ गई।

"भैया!" वह चीखी। उसकी आँखों में आँसू थे। उसने काँपते होठों से कहा, "भैया, शांता · · ·!"

"शांता? क्या हुआ उसे?" मैंने घबराकर पूछा।

"तुम बाहर चलो तो!"

मैं शांता के घर के आँगन में पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखते ही काँप उठा। वहाँ लोगों की भीड़ लगी थी।

चार-पाँच औरतें शांता पर झुकी हुई थीं। शांता दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी और उन औरतों के चंगुल से छूटने का प्रयत्न कर रही थी।

लाल चुनरिया और सुनहरा गोटा लगे घाघरे की जगह उसके तन पर सफ़ेद धोती थी। माँग का सिंदूर और माथे की बिंदिया पोंछ दी गई थीं। वह ज़मीन पर औंधी पड़ी बिलख रही थी।

"नहीं अम्मा, नहीं अम्मा, मत काढ़ौ अम्मा। म्हने जावण दयो णीं!" उसके गहने ज़मीन पर बिखरे पड़े थे।

उसका दुख देखा न गया। नीना और मैं जोरावर चाचा की ओर दौड़े।

"चाचा यह क्या हो रहा है? शांता को क्या हो गया है?"

चाचा की आँखों में आँसू तैर रहे थे। वे धीरे से बोले, "बेटा, तड़के सुबह इसके ससुराल वाले इसे यहाँ छोड़ गये। इसका पति अचानक बीमार हो गया और स्वर्ग सिधार गया। अभागिन विधवा हो गई। ये औरतें इसके गहने उतार रही हैं। विधवा को सफ़ेद कपड़े पहनने पड़ते हैं जीवन भर, तुम तो जानते ही हो, पर यह ज़िद पर अड़ी है।"

शांता चीख रही थी, "अम्मा, म्है ना दूँगी · · · चूड़ो मत काढौ अम्मा · · · म्हारी चुनरी मत उतारौ · · · थारे हाथ जोड़ूँ · · ·!"

शांता की माँ उसे समझा रही थी, "आपणी बदनामी होयगी, बेटी। थांणै की ध्यान दुनिया भांत-भांत री बाताँ करसी · · ·।"



शांता चूड़ियों को बचाने के लिये दोनों हाथों को अपने पेट और जाँघ के बीच छिपाये रखने की भरसक कोशिश कर रही थी। चार-चार औरतों से चूड़ियाँ बचाने को जूझती लड़की को देख मेरे मन में एक प्रश्न उठा – क्या जीवन भर यह विधवा रहेगी ? क्या अब उसे कभी भी एक सामान्य बालिका और युवती का जीवन नहीं जीने दिया जायेगा ?

मन में एक विद्रोह जन्म लेने लगा। एक क्रांतिकारी आंदोलन उफान ले रहा था, 'नहीं होने दूँगा किसी की ऐसी दुर्दशा ! मेरी कोई छोटी बहन या भाई नहीं चढ़ेंगे इस तरह विवाह की बलि-वेदी पर !' मैंने दोनों मुट्ठियाँ कस कर भींच लीं, नहीं तो गुस्से में न जाने क्या कर बैठता।

एक चीख ने मेरा ध्यान भंग किया। शांता की रंग-बिरंगी चूड़ियों को उन औरतों ने मसल कर तोड़ दिया था और शांता रोए जा रही थी। उसकी कलाइयों से खून बह रहा था, और दूर कहीं पर गीत गूँज रहा था – "मरुधर म्हारो देश म्हाने बालौ लागे रे ."

मैंने नीना की ओर देखा। उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। वह कुछ बोल न पा रही थी। परन्तु एकाएक मेरे उफनते विचारों को शब्द मिल गये। जोरावर चाचा का हाथ पकड़ कर मैं चिल्ला

पड़ा, "चाचा, ले चलिए शांता को यहाँ से दूर! आप भी तो इसके कुछ हैं। मैं पापा से कह कर इसे स्कूल में दाखिल करवा दूँगा। यह पढ़ेगी चाचा . . .।"

यह सुनकर नीना का चेहरा खिल उठा। आँसू पोंछते हुए वह भी बोल पड़ी, "हाँ चाचा, इसे आप हमारे यहाँ ले चलिए। माँ खुश होगी। यह मेरे साथ रहेगी।"

चाचा की आँखें नम हो आयीं। उन्होंने हम दोनों को अपनी बाँहों में भींच लिया, "ठीक है बेटा, हम ऐसा ही करेंगे . . . ऐसा ही करेंगे।"

साहबज़ादी अंजुम

रज़िया ज़ैदी

नवाब साहब के पूरे खानदान, नौकर-चाकर, की परवरिश होती थी फ़लकनुमा में। हाथी झूमते थे मियाँ, हाथी! महल में हर दिन ईद का दिन था। मुर्गबाज़ी, बटेरबाज़ी, पतंगबाज़ी, क्या-क्या खेल तमाशे थे।

कहानी और हकीकत दोनों बिल्कुल अलग चीज़ हैं। लेकिन गौर करें तो हर कहानी के पीछे एक हकीकत है और हर हकीकत एक कहानी बन जाती है। जैसे, लखनऊ के नवाबों की सच्ची कहानियाँ हकीकत होते हुए भी आज कहानी बन कर रह गई हैं। विक्टोरिया स्ट्रीट पर अक्सर एक बहुत तेज़ आवाज़ सुनाई देती है। एक रोबदार आवाज़, "अरे भाई, सब कहाँ चले गए? हम पुकार रहे हैं और कोई जवाब नहीं देता।"

लोगों से पूछने पर लखनऊ के एक बुज़ुर्ग ने बताया कि यह एक किस्मत के मारे नवाब हैं। ऐश करते रहे, बगैर अंजाम सोचे हुए। आज यह हाल है। भूखे हैं मगर बातचीत में वही शान है। बेचारे! दिमाग ही काबू में नहीं है। अगर कोई आवाज़ देता है कि इनको कुछ खिलाए-पिलाए तो गरजदार आवाज़ में पूछते हैं, "कौन हो? क्या चाहते हो?"

"अरे मियाँ, यह नसीबों का मारा नवाब इस हालत को क्यों पहुँचता अगर इनके खानदान में भी कोई साहबज़ादी 'अंजुम' जैसी लड़की पैदा हुई होती?"

और फिर उन्हीं बुजुर्ग ने अंजुम की कहानी भी हमको सुनाई –

नवाब आलीजाह बहुत बड़े नवाब थे। कैसरबाग, लखनऊ में एक शानदार कोठी, बल्कि महल था, 'फ़लकनुमा'। नवाब साहब के पूरे खानदान, नौकर-चाकर, मुसाहबीन, हर तरह के लोगों की परवरिश होती थी फ़लकनुमा में। हाथी झूमते थे मियाँ, हाथी! महल में हर दिन ईद का दिन था। मुर्गबाज़ी, बटेरबाज़ी, पतंगबाज़ी, क्या-क्या खेल तमाशे थे।

हर खास मौके पर नवाब साहब शानदार दोशाला ओढ़ कर बाहर आते। बहुत बड़े मैदान में तख्त लगता, कारचोबी शामियाना होता, नवाब साहब के सामने गंगा-जमनी हुक्का होता। वे सुनहरे तकिए के सहारे बैठते।

मुकाबले में आने वाले मुर्ग अपने खूबसूरत नामों के साथ मैदान में आते और मुकाबला शुरू होता।



'फ़लक सैर', 'नेक कदम', 'गौहर ताज', वगैरह घंटों लड़ाए जाते। जीतने वाले मुर्ग को नवाब साहब अपने हाथों इनाम देते। इसी तरह बटेर का मुकाबला होता। फ़खरू मियाँ की 'खुश कदम' सबसे ज़्यादा इनाम बटोरती।

सबसे दिलचस्प और ज़ोरदार मुकाबला पतंगबाज़ी का होता। कुछ न पूछिए जनाब, जब रंगारंग पतंगें मैदान में उतरतीं तो क्या समां होता! मुकाबला ऐसे शुरू होता कि पहली पतंग नवाब साहब खुद उड़ाते। सुनहरे सितारों से सजी हुई पतंग। इसकी चरखी किसी खास मुसाहिब के हाथ में होती। वह मांझा लपेट कर चरखी तान लेते तो नवाब साहब खींच कर छोड़ देते और कहते, "अमां मियाँ नौशाद, ढील दो, ढील!"

नौशाद मिर्ज़ा, माहिर-पतंगबाज़ी, इस तरह ढील देते कि नवाब साहब की पतंग आसमान से बातें करने लगती और 'वाह, वाह! सुबहानअल्लाह, सुबहानअल्लाह!' के शोर से मैदान गूँज उठता और फिर मुकाबला शुरू। पतंगें उड़ने लगतीं, पेंच लड़ने लगते और शोर-हंगामों के दरम्यान मुकाबला शुरू होता।

इसी तरह शादी-ब्याह के मौके पर न पूछिये जनाब, क्या समां होता। कितने पहले से महल और आसपास ऐसी रौशनी कि रात पर दिन का गुमां हो। ऐसी सजावट कि नज़र न टिके। लंगरखाने जारी हो जाते, गाना-बजाना एक हंगामा – अब साहब क्या-क्या बतायें आपसे। कुछ आँखों देखी है, कुछ सिर्फ़ कानों सुनी है, जिस पर एतबार मुश्किल से आता है।

नवाब साहब के दो लड़के थे। नवाबज़ादा आली बख्त और नवाबज़ादा आली वकार। आली बख्त को लिखने-पढ़ने का बहुत शौक था पर नवाब साहब को यह पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि स्कूल, कॉलेज में हर तरह के लड़के पढ़ते हैं, उसमें नवाबज़ादों का जाना नवाबी आन के खिलाफ़ है। लेकिन आली

बख्त अपनी ज़िद से पढ़ते रहे और आखिर में विलायत चले गए। वहीं बस गए और वहीं शादी कर ली। नवाब साहब को लिख दिया कि हमको कुछ नहीं चाहिए। हमारे हिस्से का सब कुछ आली वकार की बेटी, अंजुम को दे दिया जाए।

नवाबज़ादा आली वकार बिल्कुल असली नवाब थे। सारे शौक वैसे ही, बल्कि कुछ ज़्यादा ही रंगीन मिज़ाज थे। उनकी इकलौती बेटी अंजुम बहुत ही समझदार लड़की थी। उसने ज़िद करके अपना दाखिला स्कूल में करवा लिया था। माँ-बाप की चहेती थी, इसलिए उसकी हर बात मान भी ली जाती थी। बड़े नवाब साहब खफ़ा होते कि अंजुम ने उनको कहीं मुँह दिखाने के काबिल नहीं रखा।

"कितनी शर्मिन्दगी होती है जब वह अपनी शानदार पोशाक के बजाए उल्टे-सीधे कपड़े पहन कर स्कूल जाती है।" वे खीझकर कहते।

अजुंम दादा जान को समझाती कि तालीम ज़रूरी चीज़ है। लेकिन कोई न समझता, न ही कोई उससे खुश था।

नवाब बेगम खास तौर पर बहुत परेशान रहतीं कि बेटी स्कूल जाती है, मोटी-मोटी किताबें पढ़ती है, वह भी फ़िरंगियों की ज़ुबान में। अल्लाह! कहीं सेहत खराब हो गई तो हम क्या करेंगे?

उनकी मुसाहिब औरतें भी हाय-हाय करतीं, "क्या हुज़ूर साहिबा! बिल्कुल हक बात कह रही हैं आप! अल्लाह सलामत रखे हमारी साहबज़ादी को। यह सुबह-शाम वक्त-बेवक्त घर से निकलना कोई अच्छी बात नहीं है। इस उम्र में इतनी मेहनत? देखो तो मेरी लाडो का चेहरा कैसा कुम्हला के रह गया है। सरकार, आप साहबज़ादी को किसी आमिल को दिखलाइए। यह पढ़ने की धुन इसके सर पर कैसे सवार हो गई? मुए फ़िरंगियों का साया न हो गया हो! अल्लाह की मार पड़े उन कमबख्त मारों को! क्या ज़ाफ़रान जैसा रंग फीका पड़ गया है।"



अंजुम ऐसी तमाम बातों का मुकाबला अच्छे से करती रही और बड़ी हिम्मत से आगे बढ़ती रही। इस बीच बड़े नवाब साहब का इन्तकाल हो गया।

अंजुम ने देखा, दादा जान के इन्तकाल के बाद उसके वालिद ने और हाथ खोल दिया। खूब आज़ादी से दौलत लुटाते रहे। मुसाहबीन चापलूसी कर-कर के अपनी थैली भरते रहे। अंजुम अपने अब्बा जान को समझाने की कोशिश करती पर वे अपनी आदतों से बाज़ नहीं आते।

एक रोज़ बेटी के इस तरह समझाने पर नवाब साहब को गुस्सा आ गया, "अंजुम, तुम इन खुले हुए हाथों को रोकना चाहती हो? ऐसा नहीं हो सकता। इन हाथों को सिर्फ़ मौत रोक सकती है।"

नवाब साहब का इस तरह कहना बेगम साहिबा को बहुत बुरा लगा। "खुदा न करे, नवाब साहब, आप ऐसी बातें क्यों करते हैं? बच्ची है, उसको कहने दीजिए। अल्लाह आपको ये मालो-दौलत, ऐशो-इशरत हमेशा नसीब करे। आप अपना दिल न मैला करें। हम बच्ची को समझा देंगे।"

उन्होंने लड़की से ताकीद की, "अंजुम, हम आइन्दा ऐसी बातें न सुनें। पढ़ने-लिखने को इसीलिए मना किया जाता है।"

और मियाँ, आखिर वह वक्त आ ही गया जिसका डर था। कर्ज़ा बढ़ता गया। रात के परदे में ज़ेवर और चाँदी के बर्तन एक-एक कर के बिकने लगे। अंजुम देखती रही और कुढ़ती रही। आखिर एक दिन उसने फैसला कर ही लिया, 'यह घर कैसे संभलेगा? अब्बा हुज़ूर का सहारा हमको बनना है। अब हम मुलाज़मत करेंगे।'

जिस वक्त अंजुम ने नौकरी का इरादा ज़ाहिर किया, मानो तूफ़ान आ गया हो। नवाब साहब एकदम काँप उठे। बस इतना ही बोल पाए, "परवरदिगार, क्या यह दिन भी देखना नसीब था?"

नवाब बेगम तो पूरे दिन रोती रहीं।

वक्त हालात से समझौता करा ही देता है। मुसाहबीन एक-एक करके खिसक गए। जिस हवेली में खोखले कहकहे, बेतुकी बातें और रुपयों की झंकार से कान पड़े आवाज़ नहीं सुनाई देती थी, वहाँ एकदम सन्नाटा छा गया।

दौड़-भाग कर कोशिश करके अंजुम ने नौकरी ढूँढ ही ली। नौकरी तो अच्छी मिल गई लेकिन दूसरे शहर में। नवाब साहब में अब किसी बात का विरोध करने की सकत नहीं रह गई थी। बस इतना बोले, "बेटी, अब तो हम बिल्कुल ही अकेले रह गए।"

अंजुम ने बहुत कोशिश की कि माँ-बाप को साथ लेती जाए, लेकिन वे लोग इस पर तैयार नहीं हुए। अंजुम की नौकरी क्या थी, मियाँ, ये तो हमको भी नहीं मालूम, लेकिन सुना है तनख्वाह बहुत बड़ी थी।

नवाब साहब हालात को बर्दाश्त न कर पाये। उन्होंने तो बिस्तर पकड़ लिया। बीमारी ने तूल खींचा, हालत खराब हुई। अंजुम को इत्तला गई। उसने फ़ौरन अपने चचा को विलायत तार भेजा और घर पहुँची, लेकिन नवाब साहब बेटी का इन्तज़ार नहीं कर सके।

नवाब आली बख्त तार मिलते ही पहुँच गए। हवेली की हालत देखकर काँप उठे। अंजुम चचा को देखकर बेचैन हो गई, "बड़े अब्बा, सब कुछ खत्म हो गया।"

नवाब साहब ने समझाया, तसल्ली दी, खूब तारीफ़ की, "मेरी बेटी, तुमने अपनी हिम्मत, अपनी कोशिश से हमारा नामो-निशान मिटने से बचा लिया। ऐसे हालात में रह के तुमने यह सब किया। अंजुम, मेरी बच्ची, हमें तुम पर नाज़ है।"

और फिर नवाब आली बख्त और अंजुम ने 'फ़लकनुमा' को बेच दिया। काफ़ी कर्ज़ा अंजुम पहले ही अदा कर चुकी थी, अपनी कमाई से। हवेली बिकने के बाद कर्ज़ा पूरा अदा हो गया। बेगम साहिबा ने अंजुम को लिपटा लिया "बेटी, तुमने हमारी इज़्ज़त रख

ली। तुम अपनी ज़िद से हमारे मना करने के बावजूद पढ़ी-लिखी, वह आज हमारे ही काम आया।"

विलायत लौटते वक्त नवाब आली बख्त ने इस्रार शुरू किया, "अंजुम, तुम और तुम्हारी वालिदा हमारे साथ चलो। अब हिन्दुस्तान में हमारा क्या रखा है?"

अंजुम तैयार नहीं हुई, "बड़े अब्बा, हम अपने वतन को छोड़कर क्यों जाएँ? यहाँ किस चीज़ की कमी है, अगर है भी तो उसे पूरा करना हमारा फर्ज़ है। हमारे मुल्क को हमारी ज़रूरत है। हुज़ूर, आप भी वापिस आ जाइए। अब्बा जान की रूह कितनी खुश होगी, अगर लखनऊ की सरज़मीन पर उनका खानदान फिर से आबाद हो जाए! बड़े अब्बा, यह हवेली तो बिक ही गई है। कर्ज़ा सब अदा हो चुका है। अभी रुपया बचा है, एक छोटा-सा घर खरीद लें। हम कोशिश करके अपना तबादला यहाँ करा लेंगे। और कभी फिर वह दिन भी आ सकता है कि हम 'फ़लकनुमा' को वापस ले लें।"

लगातार इस्रार और तरह-तरह से समझाने पर नवाब साहब तैयार हो गये। सच तो यह था कि हिन्दुस्तान आने के बाद खुद उनका दिल भी वापस जाने को नहीं चाह रहा था। वतन की मिट्टी उनके पैर पकड़ रही थी।

मुहल्ला लालबाग में खूबसूरत, नन्ही-सी कोठी, 'आलीजाह' आज भी चहल-पहल के साथ मौजूद है।

"अच्छा, मियाँ, अब आप लोग आराम करें, हम चलते हैं।" कहते हुए वह बुज़ुर्ग ठंडी साँस ले, उठ खड़े हुए। और हम अंजुम के बारे में सोचते सोने चल दिए।

अब्बू की शेरवानी

सुभद्रा सेन गुप्ता

"देख! देख!" अब्बास आसमान को ताक रहा था,
"वो दीवाना नवाब फिर सुनहरी दुम वाली पतंग उड़ा रिया है।"
बख्तियार खान एक बूढ़े, झक्की नवाब थे, दुनिया
में कोई काम था, तो बस पतंग उड़ाने का!

"आपको तो नई शेरवानी चाहिए होगी।" मुशीर की अम्मी ने उसके अब्बू से कहा। उनके पास सिर्फ़ एक शेरवानी थी, वह भी अब घिसी-पिटी और बदरंग-सी हो चली थी।

"और जूतियाँ?" मुशीर की बहन रौनक बोली, "ज़री वाली, चमकदार जूतियाँ?"

अहमद हसन 'देहलवी' मुस्कराए और बोले, "अभी तो पुरानी चीज़ों से ही काम चलाना पड़ेगा।"

नए कपड़े तो उनके लिए एक हसीन ख्वाब था। मदरसे में पढ़ाने की जो तनख्वाह मिलती थी, उससे तो घर का खर्चा ही मुश्किल से निकल पाता था।

मुशीर के अब्बा शायर थे। उस दिन, सुबह-सुबह यह खबर मिली थी कि उन्हें एक अमीर नवाब साहब के घर अपनी गज़लें और नज़्में पेश करने के लिए बुलाया गया है। मुशीर और रौनक तो

खुशी से नाचने-झूमने लगे थे। ऐसे मुशायरों में शायरों को अच्छा इनाम दिया जाता था। और, अगर शायर कुछ ऐसा सुना दे जो सुनने वालों को बहुत पसंद आ जाए, तब तो इनाम और भी बढ़िया हो सकता था।

तभी उनकी आँखें दीवार पर कील से टँगी, अब्बू की पुरानी शेरवानी पर पड़ीं। पैवंदवाली, उधड़ी हुई, धुलाई की मार खाई शेरवानी! अब्बू उसे पहनकर कहाँ जा सकते थे!

उस दिन दोपहर में, मदरसे की पढ़ाई के बाद मुशीर अब्बास के साथ कंचे खेल रहा था और सोच रहा था, अब्बू की शेरवानी के बारे में। एक आसमानी रंग के कंचे पर निशाना लगाते हुए उसने कहा, "अजीब मज़ाक है!"

"क्या मज़ाक है?" अब्बास ने पूछा, "क्या कह रिए हो?"

"हमारे बादशाह तो खुद शायर हैं। अपने आपको बहादुरशाह ज़फ़र कहते हैं। और देखो, उनकी हुकूमत में मेरे अब्बू जैसे उम्दा शायर के पास एक नई शेरवानी तक के पैसे नहीं हैं। यह मज़ाक नहीं तो क्या है?"

"नए कपड़े खरीदने के लिए तो मिर्ज़ा गालिब होना पड़ता है, मियाँ!" अब्बास कंचे झटकाते हुए बोला, "और वह बूढ़ा बादशाह कर भी क्या सकता है? उसके पास ताकत कहाँ है? उसकी सल्तनत तो रह गई है बस इस दिल्ली शहर तक और वहाँ भी तो गोरों की फ़ौज का हुक्म चल रिया है।" कलाई झटकते हुए अब्बास ने एक हरे दूधिया कंचे पर निशाना लगाया, पर चूक गया।

मुशीर तो कुछ और ही सोच रहा था, 'मुशायरा कैसा होगा! कितनी चमक रही होगी नवाब साहब के दीवानखाने में झाड़फ़ानूसों की रोशनी! फ़र्श पर मोटे, नरम गद्दे बिछे होंगे और गद्दों पर खूबसूरत कालीन और मखमली तकिए। अब्बू कह रहे थे कि ज़ौक साहब जैसे नामी शायरों को भी दावत दी गई है। वे सब शानदार रेशमी

कपड़ों और ज़ेवरात से लदे होंगे। और अब्बू? अब्बू बेचारे अपनी शेरवानी की फटी आस्तीन छिपाते, पुराने जूते-टोपी पहने, एक कोने में बैठेंगे।' यह सोचना भी मुशीर से बर्दाश्त नहीं हो रहा था।

"देख! देख!" अब्बास आसमान को ताक रहा था, "वो दीवाना नवाब फिर सुनहरी दुम वाली पतंग उड़ा रिया है!"

बख्तियार खान एक बूढ़े, झक्की नवाब थे, जो बल्लीमारान की उसी गली कासिम जान में रहते थे जहाँ मुशीर और अब्बास। अगर उन्हें दुनिया में कोई काम था, तो बस पतंग उड़ाने का! नवाब साहब की पतंगों की पूँछ असली सोने के धागे की बनी होती थी। मोहल्ले के सभी लड़कों की नज़र उनकी पतंगों पर रहती थी क्योंकि कटी पतंग को वापस करने पर नवाब साहब एक आना देते थे। और, एक आने में जामा मस्जिद के पास खोंमचे वाले से कितनी सारी बिरयानी और ज़र्दा मिलता था!

अब्बास और मुशीर ने देखा, एक लाल-काली पतंग आसमान में गोते खाती हुई नवाब साहब की सफ़ेद-सुनहरी पतंग की तरफ़ बढ़ी। दोनों के धागे एक–दूसरे से उलझ गए और पतंगों की लड़ाई शुरू हो गई। देखते ही देखते सफ़ेद पतंग हार गई और कटकर नीचे गिरने लगी। लड़के उसके पीछे-पीछे भागे। मुशीर तो अभी से ही ख्यालों में बिरयानी के चटखारे ले रहा था।

बाकी लड़कों के साथ दौड़ लगाते हुए मुशीर और अब्बास गली में भागे और पतंग गिरने से पहले ही पकड़ ली। अब्बास ने फ़ख्र से मुशीर की तरफ़ देखा।

"बिरयानी!" वह चहकते हुए बोला।

उन्होंने नवाब साहब की हवेली का फ़ाटक खटखटाया, पहले धीरे से फिर ज़ोर से। कुछ देर बाद फ़ाटक के पास का छोटा दरवाज़ा खुला और नवाब साहब के ज़ाती खिदमतगार फ़खरू मियाँ बाहर निकले।

"अमां, क्या पतंग लाए हो?" उन्होंने शक भरी आवाज़ में पूछा।

"आना लाए हो?" अब्बास ने शरारत से पूछा।

जब फ़खरू मियाँ ने दोनों को अन्दर बुलाया तो अब्बास और मुशीर हैरान हो गए थे। फ़खरू हमेशा उन्हें फ़ाटक पर ही पैसे दे देता था।

"क्यों, फ़खरू भाई," अब्बास सकपका कर बोला, "क्या कोई खास बात है?"

"आज से नवाब साहब ने तय किया है कि वह अब कभी पतंग नहीं उड़ाएँगे। इसलिए उन्हें पतंग वापस नहीं चाहिए।" और फ़खरू मियाँ ने एक लम्बी, ठण्डी साँस ली।

"अरे, यह कैसे मुमकिन हो सकता है?" दोनों लड़कों ने एक साथ कहा, "नवाब साहब पतंगबाज़ी कैसे छोड़ सकते हैं? पतंगबाज़ी तो उनकी जान है।"

तभी अन्दर से एक गुस्सैल आवाज़ आई, "फ़खरू! फ़खरू! कहाँ गया नमकहराम? ... फ़खरू!" और नवाब साहब, छड़ी घुमाते धड़धड़ाते हुए आंगन में घुसे। फिर मुशीर और अब्बास को देखकर बोले, "ये लड़के यहाँ क्या कर रहे हैं?"

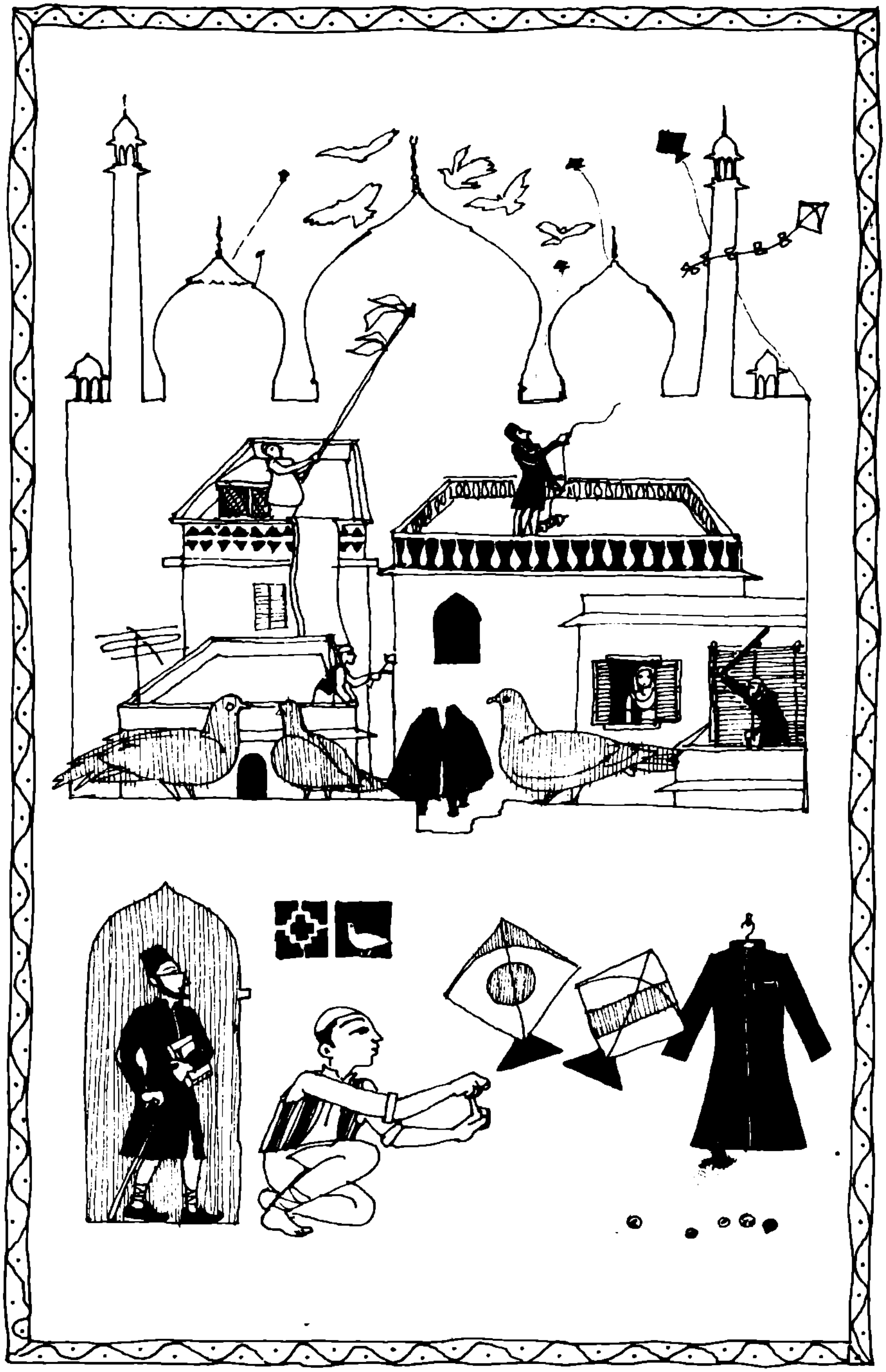
"पतंग वापस देने आए हैं, हुज़ूर।"

"तुमने इन्हें बताया नहीं कि हमने पतंगबाज़ी छोड़ दी है? क्या फ़ायदा है, जब बुल्ले खान मेरी पतंगें काटता ही रहता है। मेरी पतंगें तो उसकी पतंग के सामने टिक ही नहीं पाती हैं।"

मुशीर और अब्बास ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा।

"हम उससे बेहतर मांझा ला सकते हैं। सच हुज़ूर, सबसे उम्दा मांझा।" मुशीर बोला।

"पिछली दफ़ा तो तुमने कहा था कि मांझा लखनऊ का है और देखो उसका नतीजा!" नवाब साहब ने मुशीर के हाथ में पतंग की तरफ़ इशारा किया।



मुशीर सकपका गया। 'हाय, बिरयानी!' जल्दी से बोला, "हुज़ूर, मैं मांझा घर में ही बनाऊँगा। उससे बेहतर मांझा बन ही नहीं सकता।"

"हाँ! फ़खरू भी तो मांझा घर में ही बनाता है पर बुल्ले खान के मांझे के सामने उसकी क्या बिसात!" नवाब साहब बोले।

"हम आपके लिए मांझा बना सकते हैं, हुज़ूर," अब्बास ने गुज़ारिश की, "मुशीर और मैं बल्लीमारान में सबसे बढ़िया मांझा बनाते हैं। इस्लामुद्दीन पतंगवाले को भी बेचते हैं।"

"हाँ हुज़ूर! हमारी तरकीब किसी को नहीं मालूम है।" मुशीर नवाब साहब को राज़ी करने की कोशिश कर रहा था।

बख्तियार खान ने हामी भरी, "ठीक है। कल से काम शुरू कर दो। मांझे का एक गोला बनाने में कितना वक्त लगेगा?"

"बस एक दिन, अगर धूप निकले और मांझा ठीक से सूख जाए तो।" मुशीर खुशी छिपा नहीं पा रहा था।

"ठीक है! ठीक है!" नवाब साहब बोले, "अगर हम बुल्ले खान की पतंग काटने में कामयाब हो गए, तो दोनों को सोने की एक-एक मोहर मिलेगी।"

"सोने की मोहर!" अब्बास और मुशीर हैरत से नवाब साहब को ताकने लगे। उन्होंने तो कभी भी सोने की मोहर नहीं देखी थी। नवाब साहब के इशारे पर फ़खरू मियाँ ने दोनों को एक-एक आना दिया।

क्या मज़ा आया दोनों को बिरयानी खाने का – नरम-गरम गोश्त के टुकड़े मसालेदार चावल में! मुशीर और अब्बास भी अपने ख्याली पुलाव पकाने लगे – सोचने लगे कि सोने की मोहर से क्या-क्या खरीदेंगे। अब्बास तो कुछ तय ही नहीं कर पा रहा था – घर में सबके लिए तोहफ़े? या बनसी भाई की दुकान से कपड़े? या मिठाई? या ...

पर मुशीर ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि वह मोहर से क्या खरीदेगा – अब्बू के लिए एक नई शेरवानी, और साथ में टोपी और चमचमाते ज़री वाले जूते जिन्हें पहन कर अब्बू शान से मुशायरे में जा सकें।

अगले दिन, मुशीर और अब्बास काम में जुट गए। नवाब साहब के आंगन में लकड़ी की दो बल्लियाँ गड़ी हुई थीं, जिन पर फ़खरू मियाँ मांझा बनाते थे। मुशीर और अब्बास ने धागा लिया और एक बल्ली से लेकर दूसरी बल्ली तक लपेटते गए। मज़बूत मांझे के लिए कम-से-कम आठ धागे होना ज़रूरी था न! फिर दोनों ने पत्थर पर काँच पीसकर उसे गोंद और आटे में मिलाकर लेई बनाई। तब हुआ मांझे पर लगाने का मसाला तैयार।

काँच के मसाले से हाथ कटने का डर था, इसलिए दोनों ने अपनी उंगलियों पर कपड़े की लम्बी-लम्बी पट्टियाँ लपेट ली थीं। फिर बड़े ध्यान से मसाला उठा कर उन्होंने धागे पर मला। जब मसाले की एक परत सूख गई, तो दूसरी लगाई। बड़ी मेहनत का काम था। दोनों पसीने से तर-बतर हो गए।

शाम तक मांझा तैयार हो गया। मांझे की धार जाँचने के लिए, उस पर हाथ फेरकर अब्बास बोला, "हो गया! भई, हो गया।" पर मुशीर को लगा कि अभी कुछ कसर बाकी है।

"मेरे ख्याल से मसाले की दो परत और होनी चाहिए।" मुशीर बोला, "अभी पूरी तरह खुरदरा नहीं हुआ है। मैं ज़रा भी कसर नहीं छोड़ना चाहता हूँ।"

"ठीक है," अब्बास बोला, "एक बार उड़ा के देख लेते हैं।" मुशीर के घर की छत से उन्होंने नया मांझा इस्तेमाल करके पतंग उड़ाई और दो-तीन काटी भी। अब्बास का भरोसा और बढ़ रहा था। तभी आसमान में बुल्ले खान की लाल-काली पतंग उनकी पतंग की तरफ़ झपटती हुई आई।

"पेंच लड़ाओ!" अब्बास चीखा, "वो काटा! वो काटा!"

दोनों पतंगें एक दूसरे की तरफ़ लपकीं और नज़दीक आते ही एक दूसरे से उलझ गईं। मुशीर और अब्बास ने मांझा अपनी तरफ़ खींचा और फिर! अरे, यह क्या! उन्होंने हैरानी से अपनी पतंग को देखा – वह तो हवा में तैर रही थी और मांझा मुशीर के हाथ में झूल रहा था।

"मैंने कहा था न कि मसाला और लगाओ।" मुशीर गुस्से से झल्लाया।

"ठीक कह रिया था," अब्बास ने हामी भरी, "अब कल करेंगे।"

मांझा चरखी पर लपेटते हुए मुशीर ने सोचा कि मुशायरा तो बस एक हफ़्ते बाद ही है। 'कल मुझे हर हाल में मोहर लेनी ही है!' उसने अपने आपसे वादा किया।

अगली शाम, नवाब बख्तियार खान अपनी हवेली की सबसे ऊँची छत पर फ़खरू, मुशीर और अब्बास के साथ तैनात थे। नवाब साहब की पतंग, जहानबाज़, आसमान में उड़ रही थी – और मुशीर का दिल धड़क रहा था। हवा का एक झोंका आया, नवाब साहब की पतंग ऊपर उठी और नीले, बरसाती आसमान में लहराने लगी। डूबते सूरज की रोशनी में उसकी सुनहरी पूँछ चमचमा रही थी।

तभी दाईं तरफ़ से बुल्ले खान की लाल-काली पतंग चील की तरह झपटती हुई आई। मुशीर का दिल और भी ज़ोर से धड़कने लगा। "या अल्लाह," उसने खुदा को पुकारा, "मुझे सोने की मोहर चाहिए, अब्बू की शेरवानी के लिए।"

नवाब साहब बुदबुदा रहे थे, "हम तुम्हें देख लेंगे, बुल्ले खान।" और उन्होंने अपनी पतंग को ढील दी। पतंग सीधी बुल्ले खान की पतंग के रास्ते में आई। पेंच लड़े। दोनों पतंगें साथ-साथ ऊपर उठीं। नवाब साहब ने डोर को झटका दिया। किसी की पतंग कटी! लेकिन, किसकी?

अरे, वाह! बुल्ले खान की लाल-काली पतंग धीरे-धीरे नीचे गिरने लगी। नवाब साहब, फ़खरू मियाँ, अब्बास और मुशीर की खुशी का ठिकाना न था।

"अल्लाह हो अकबर!" बख्तियार खान फ़ख्र से चिल्लाए और एक टाँग पर नाचने लगे। फ़खरू मुस्करा रहा था। मुशीर और अब्बास एक दूसरे से लिपट गए। तभी फ़खरू ने अपनी जेब से सोने की दो मोहरें निकाल कर दोनों लड़कों को एक-एक दी।

नवाब बख्तियार खान पतंग उड़ाते रहे। जहानबाज़ बेखटके आसमान में ऊँची उड़ रही थी। उसके मुकाबले की कोई और पतंग नहीं थी। अपनी मोहर हाथ में भींचे मुशीर सुनहरे ख्वाब देख रहा था। सोच रहा था कि एक दिन जब अब्बू मशहूर होंगे तो कहेंगे, "यह सब इसलिए हुआ क्योंकि मेरे बेटे मुशीर ने मुझे एक कीमती शेरवानी खरीद कर दी थी!"

दूरियाँ

स्वप्ना दत्ता

"पैरामाउण्ट नारियल का तेल! टिंग-टाँग!"
"डज़न शी लुक ए रस्टिक? बिल्कुल बहन जी लगती है। और नाम भी देखो, प्रेमलता! बिल्कुल गँवारों की तरह!"

"नेहा जी! यह किताब शायद आपकी है।" प्रेमलता की आवाज़ कुछ ज़्यादा ही धीमी थी या शायद नेहा सचमुच ही उसे सुन न पाई हो। वह तेज़ कदमों से चलती रही।

"नेहा!" प्रेमलता ने दुबारा पुकारा। पर नेहा तब तक बस स्टॉप पर पहुँच चुकी थी।

सुबह का समय था। बस स्टॉप पर अलग-अलग पोशाक पहने कई स्कूलों के विद्यार्थी खड़े थे। नेहा भी वहीं जाकर अपनी सहेलियों के पास खड़ी हो गई। धीरे-धीरे प्रेमलता भी वहाँ पहुँच गई। वह किताब अब भी उसके हाथ में थी। उसने किताब खोली। पहले पन्ने पर ही नेहा का नाम लिखा था। चलते समय उसके बस्ते से गिर गई होगी। प्रेमलता ने नेहा की तरफ़ देखा। वह अपनी सहेलियों के साथ बातें कर रही थी।

"यह किताब आप ही की है न?"

"यस, थैंक्स।" नेहा प्रेमलता के हाथ से किताब लेकर फिर अपनी सहेलियों से बातें करने लगी। प्रेमलता की तरफ़ उसने देखा तक नहीं।

प्रेमलता कुछ देर तक खड़ी रही। न जाने क्यों, नेहा उसे बहुत अच्छी लगती थी। सुन्दर तो बहुत लोग होते हैं पर नेहा के व्यक्तित्व में कुछ और ही था। एक ऐसी चमक, एक ऐसी शान जो कम लोगों में ही दिखाई देती है। 'काश! नेहा मेरी दोस्त होती।' प्रेमलता ने मन-ही-मन कहा।



एक ही मुहल्ले में रहने के बावजूद उन दोनों में मामूली जान-पहचान तक नहीं थी। हाँ, एक-दूसरे के नाम दोनों ज़रूर जानती थीं। वैसे तो दोनों के पिता सरकारी नौकर थे और दोनों ही किरण लोक के टाइप फ़ोर क्वार्टर्स में रहती थीं, पर ज़िन्दगी में फ़ासले बहुत तरह के होते हैं। कुछ फ़ासले हम देख नहीं पाते पर उन्हें लाँघना असंभव होता है। नेहा और प्रेमलता के बीच कुछ ऐसे ही फ़ासले थे।

दोनों परिवारों के रहने का ढंग भी बिल्कुल अलग था। फ़र्क तो जीवन के मूल्यांकन में भी था। प्रेमलता के पिता विदेश मंत्रालय में कार्यरत थे पर स्वभाव से कट्टर स्वदेशी थे। वे घर में हिन्दी में ही बातचीत करते। अपने बच्चों को भी उन्होंने हिन्दी स्कूल में दाखिला दिलवा रखा था। मुहल्ले के ज़्यादातर बच्चे अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ते थे, उनमें नेहा भी थी। इन बच्चों के रहन-सहन, बोल-चाल, वेश-भूषा, सब ही अलग थे। उनके बीच सबसे बड़ा फ़ासला भाषा का था।

प्रेमलता को ये बच्चे अच्छे लगते थे पर वह उनसे घुल-मिल नहीं पाती थी। ये बच्चे खुद भी अपने आपको अलग रखते थे। इनमें से कोई कभी-कभी 'हैलो! हाय!' कह देता, पर इससे ज़्यादा कुछ नहीं। बाकी बच्चे तो उसकी तरफ़ देखते ही नहीं थे।

प्रेमलता कुछ देर के लिए बस स्टॉप के पास रुकी रही। फिर अपने स्कूल की तरफ़ चल दी। उसका स्कूल पास ही में था इसलिए वह पैदल चली जाती थी। उसके साथ उसका भाई प्रकाश भी जाता था, पर आज वह साथ नहीं था। वह फुटबॉल प्रैक्टिस के लिये चला गया था। अचानक प्रेमलता को हँसने की आवाज़ सुनाई दी। उसने पलटकर देखा। नेहा की सहेलियाँ उसकी तरफ़ देख रही थीं। उनकी आवाज़ भी साफ़ सुनाई दी।

"पैरामाउण्ट नारियल का तेल! टिंग-टाँग!"

"इज़न शी लुक ए रस्टिक? बिल्कुल बहन जी लगती है। जरा उसके बाल तो देखो, कितना सारा तेल चुपड़ रखा है! और नाम भी देखो, प्रेमलता! बिल्कुल गँवारों की तरह!"

"कम ऑन!" नेहा ने हँस कर कहा, "अपना नाम उसने खुद थोड़े ही रखा है।"

"मैं होती तो बदल कर दूसरा नाम रख लेती।" पिंकी ने जवाब दिया, "आजकल के ज़माने में प्रेमलता, माई गॉड!"

सोनिया बोल उठी, "क्यों वह घटिया हिन्दी स्कूल में पढ़ती है? उसके पापा भी तो गवर्नमेंट अफ़सर हैं।"

"इंगलिश मीडियम स्कूल के लिए ब्रेन भी चाहिए, मेमसाब!" डिंपल ने व्यंग्य किया, "हर किसी को अच्छे पब्लिक स्कूल या कान्वेण्ट में थोड़े ही एडमिशन मिलती है। ये सब स्कूल प्रेमलता जैसी गँवारों के लिए नहीं हैं।"

"चलो, चलो, बस आ गई!" नेहा ने चिल्लाकर कहा और बस की ओर भागी।

प्रेमलता भी अपने स्कूल की तरफ़ चल दी। उसकी आँखों में आँसू भर आए थे। क्या किसी के नाम या स्कूल या उसके कपड़ों से ही उसके बारे में राय बना लेना सही था? इनके अलावा भी क्या किसी की अपनी पहचान नहीं होती? क्या इन लड़कियों को उस पहचान से कोई भी मतलब नहीं था? उन्होंने उसे जानने की कभी कोशिश नहीं की। उन्होंने कभी नहीं सोचा कि हिन्दी स्कूल में पढ़ने के बावजूद भी वह उन्हीं की तरह एक लड़की है, जिसे दोस्ती और दोस्तों की ज़रूरत है, जिसके मन में औरों के साथ रहने की, साथ खेलने की, साथ पढ़ने की चाह भी है। अगर उसके अपने स्कूल की सहेलियाँ कहीं आस-पड़ोस में होतीं, तब शायद प्रेमलता को यह कमी महसूस नहीं होती। पर वे सब की सब दूर की रहने वाली थीं।

प्रेमलता अपने स्कूल के पास पहुँच चुकी थी। उसने जल्दी से अपनी आँखें पोंछ डालीं।

शाम को घर लौटते समय प्रकाश बड़े ही उत्साह से प्रेमलता को फुटबॉल मैच के बारे में बताने लगा। प्रकाश को अकेलेपन की कोई समस्या नहीं थी। उसके कई दोस्त आस-पास ही रहते थे। प्रेमलता को चुप देखकर उसने पूछा, "क्या बात है, दीदी?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"फिर तुम इतनी चुप क्यों हो?"

"क्या कहूँ? किससे कहूँ? ··· तुम तो अभी अपने दोस्तों के साथ कहीं खेलने निकल जाओगे और मैं घर पर बिल्कुल अकेली रह जाती हूँ।"

"हमारे सैक्टर में तो काफ़ी लड़कियाँ रहती हैं। उन सबसे दोस्ती क्यों नहीं कर लेती?" प्रकाश ने कहा।

"वे दोस्ती करें, तब न। मुझसे तो कोई बोलती तक नहीं।"

"ऐसा क्यों? तुमसे तो किसी की लड़ाई भी नहीं है। फिर वे क्यों नहीं बोलतीं?"

"क्या पता? शायद मैं उन लोगों की तरह इंगलिश मीडियम स्कूल में नहीं पढ़ती और उन लोगों की तरह बात-बात पर इंगलिश नहीं बोलती हूँ, इसलिए।"

"दीदी, इससे क्या फ़र्क पड़ता है। बल्कि तुम्हें तो गर्व होना चाहिए कि तुम हिन्दी बोलती हो, तुम्हारी भाषा हिन्दी है। इतनी सुन्दर भाषा ···" प्रकाश ने समझाना चाहा।

"पर वे लड़कियाँ तो ऐसा नहीं सोचतीं।" प्रेमलता ने कहा।

"तो फिर अंग्रेज़ी में बोल कर देखो, इसमें मुश्किल ही क्या है? तुम तो अच्छी खासी अंग्रेज़ी लिख लेती हो।"

"लिखना और बोलना एक जैसा नहीं होता।" प्रेमलता बोल उठी, "मुझे बोलने की आदत नहीं है।"

"कोशिश तो करो।" प्रकाश ने हँसकर कहा, "इन्हें तुमसे अंग्रेज़ी थोड़े ही सीखनी है। जैसा भी बोल सकती हो, बोल लेना।"

"नहीं, वे मेरा मज़ाक उड़ायेंगी।"

"तो फिर तुम्हारी मर्ज़ी।"

दोनों घर पहुँच चुके थे। प्रकाश ने दरवाज़े की घंटी दबाई।

"आओ प्रकाश, आओ प्रेमा," उनकी माँ दरवाज़ा खोलती हुई बोलीं, "बताओ तो किसका खत आया है और कौन हमारे पास आने वाले हैं?"

"मामाजी! मैं जानता हूँ, ज़रूर मामाजी होंगे।" प्रकाश ने चहकते हुए कहा।

"ठीक कहा तुमने।" माँ ने मुस्कराकर जवाब दिया, "पूरे चार साल बाद अमेरिका से वापस आ रहे हैं। यहाँ हमारे साथ पाँच-छह दिन रहने के बाद देहरादून चले जायेंगे।"

"हम इतनी जल्दी उन्हें थोड़े ही जाने देंगे।" प्रकाश ने कहा।

"प्रेमा बेटे, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है?" प्रेमलता को चुप देखकर माँ ने पूछा।

"मैं ठीक हूँ, अम्मा।" प्रेमलता ने धीरे से जवाब दिया।

"तुम्हें मामाजी के आने पर खुशी नहीं हो रही है?"

"हाँ, हो रही है।" इतना कहकर वह खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई।

उसकी माँ और कुछ नहीं बोलीं। वह रसोईघर में जाकर चाय बनाने लगीं। प्रेमलता के बर्ताव से वह कुछ हैरान-सी थीं। प्रकाश चाय पीकर खेलने चला गया। प्रेमलता खिड़की के पास खड़ी रही।

"क्या बात है, बेटे?"

"अम्मा, पिताजी भी तो सरकारी अफ़सर हैं। फिर भी उन्होंने मुझे इंगलिश मीडियम स्कूल में क्यों नहीं डाला?" उसकी आँखों में आँसू थे।

"आज अचानक तुम्हें हो क्या गया है?" माँ ने हैरान होकर पूछा, "तुम्हारे स्कूल में क्या बुराई है? और, तुम तो वहाँ पर काफ़ी खुश थी अब तक।"

"ओह हो! तुम समझती नहीं हो, अम्मा। मेरे स्कूल में बुराई नहीं है, पर मैं औरों से अलग हूँ। वे भी मुझसे नहीं मिलती हैं।"

"ये 'वे' कौन हैं?"

"यही नेहा, पिंकी, सोनिया, डिंपल वगैरह। वे तो मुझसे बात तक नहीं करतीं और मेरा मज़ाक उड़ाती रहती हैं। कितनी अकेली हूँ मैं। पूरे ब्लॉक में एक भी दोस्त नहीं है मेरी। अगर मैं भी उनके स्कूल में होती तो शायद . . ."

"ये सभी क्या एक ही स्कूल में पढ़ती हैं?"

"नहीं, पर सभी किसी न किसी पब्लिक स्कूल में ही पढ़ती हैं।"

"बेटे, दोस्ती क्या स्कूलों के हिसाब से की जाती है? दोस्ती तो इंसानों के बीच होती है – स्कूलों के बीच नहीं। क्या तुमने कभी जानने की कोशिश की कि ये तुमसे अलग क्यों रहती हैं?"

"बताया न अम्मा। हिन्दी स्कूल में पढ़ने की वजह से और हिन्दी में बोलने की वजह से।"

"तुम उन लोगों से अलग हो या अपने आपको खुद ही अलग करके रखती हो? तुम्हारी भाषा हिन्दी तो सम्मानजनक भाषा है। यह इतनी सरस और मधुर भाषा है कि . . .।"

"पर, अम्मा . . ."

"असल बात यह है कि," अम्मा ने उसे टोका, "तुम खुद हीन भावना से ग्रस्त हो और यह समस्या सिर्फ़ तुम्हारी नहीं, हिन्दी बोलने वाले अधिकतर लोगों की है।"

"ओह हो, अम्मा! तुम समझती नहीं। तुम कभी भी समझ नहीं पाओगी।" प्रेमलता आँसू पोंछते हुए अपने पढ़ने के कमरे में चली गई। न जाने सब लोग भाषण देने पर क्यों तुले हुए थे?

उस दिन से प्रेमलता और भी चुप रहने लगी। स्कूल से लौटते ही सीधे किताब लेकर बैठ जाती। पर माँ के कहे शब्द उसके कानों में गूँजते रहते, 'तुम हीन भावना से ग्रस्त हो ...' धीरे-धीरे उसे भी लगने लगा था कि अम्मा ठीक कह रही थी।

एक दिन प्रेमलता घर में अकेली थी। अम्मा प्रकाश को लेकर किसी रिश्तेदार के घर घूमने गई थी। उसके पिताजी भी टूर पर बाहर थे। लिखते-लिखते अचानक पैन में स्याही खत्म हो गई। शीशी खाली पड़ी थी। काफी ढूँढने पर भी उसे दूसरा पैन नहीं मिला। घर के सामने ही दुकान थी। प्रेमलता अपना पर्स उठाकर दुकान चली। रास्ते की दूसरी ओर नेहा का घर था। प्रेमलता ने देखा कि नेहा अपने घर के सामने अकेली खड़ी थी। उसके चेहरे पर घबराहट की झलक थी। प्रेमलता उसके पास चली गई।

"क्या बात है, नेहा? तुम इतनी घबराई-सी क्यों लग रही हो?"

"प्रेमलता, मुझे बहुत डर लग रहा है। मेरी छोटी बहन निम्मी को अचानक बहुत तेज़ बुखार चढ़ गया है। ऐसा होने पर तो उसे कभी-कभी दौरे भी पड़ते हैं।"

"तुम घर में अकेली हो क्या?"

"हाँ। मम्मी-पापा हापुड़ गए हुए हैं, शाम तक ही लौटेंगे।"

"पर वे ..."

"उनके जाते समय तो निम्मी अच्छी-खासी थी, खेल रही थी। बुखार अचानक ही आ गया। अगर उसे कुछ हो गया तो ..."

"कुछ नहीं होगा।" प्रेमलता बोल उठी, "चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। डरो नहीं, हम अभी डाक्टर को भी बुला लाएँगे।"

नेहा ने प्रेमलता का हाथ पकड़ लिया और उसे अपने घर ले गई। निम्मी पलंग पर लेटी हुई सिसक रही थी। प्रेमलता उसके माथे पर हाथ रखते ही चौंक उठी, "इसे तो बहुत तेज़ बुखार है। हमें फ़ौरन इसके सिर पर ठण्डी पट्टी रखनी चाहिए।"

"मम्मी भी ऐसा ही करती हैं।" नेहा बोली, "पर क्या किसी से बिना पूछे ऐसा करना ठीक रहेगा?"

"इसमें कोई हर्ज नहीं है। तुम फ्रिज से बर्फ निकालो और इसके माथे पर ठण्डे पानी की पट्टी लगाती रहो तब तक मैं डाक्टर को बुला लाती हूँ।"

"पर किसे बुलाओगी? हमारे फैमिली डाक्टर, डाक्टर शर्मा तो मायापुरी में रहते हैं। मुझे उनका पता भी मालूम नहीं है।"

"कोई बात नहीं। मुखर्जी आंटी हमारे पड़ोस में ही रहती हैं। वह बहुत अच्छी डाक्टर हैं। मैं उन्हें ही बुला लाती हूँ।"

"पर ··· अगर ···"

तब तक प्रेमलता निकल चुकी थी। नेहा निम्मी के सिर पर ठण्डी पट्टी रखती रही। थोड़ी ही देर में प्रेमलता डाक्टर मुखर्जी को लेकर वहाँ पहुँच गई।

"घबराओ नहीं बेटे, सब ठीक हो जाएगा।" डाक्टर ने कहा। उन्होंने निम्मी को अच्छी तरह से देखा और दवा पिला दी। निम्मी शान्त होकर सो गई।

"घबराने की कोई बात नहीं। पर प्रेमलता, नेहा के मम्मी-पापा के लौटने तक तुम यहीं रहना।"

"वो तो मैं रुकने ही वाली थी।" प्रेमलता ने जवाब दिया।

"कोई ज़रूरत पड़े तो मुझे दुबारा बुला लेना।" यह कहते हुए डाक्टर मुखर्जी चली गईं।

"इनकी फीस?" नेहा ने पूछा।

"मुखर्जी आंटी तो पड़ोसियों से फीस लेतीं ही नहीं।"

"प्रेमलता, मैं तुम्हारी बहुत ही आभारी हूँ ···" नेहा बोली।

"छोड़ो भी। दोस्तों के बीच कभी 'आभार' शब्द का प्रयोग नहीं होता।" प्रेमलता ने कहा, "अच्छा, यह तो बताओ, तुमने पिंकी, सोनिया को क्यों नहीं बुलाया?"



"बुलाया तो था, पर पिंकी पिक्चर देख रही थी, डिंपल के घर रिश्तेदार आए थे और सोनिया को शॉपिंग के लिए जाना था। किसी के पास वक्त ही नहीं था।"

"चलो, मैं तो थी।" प्रेमलता हँसकर बोली।

"हाँ, तुम ज़रूर थी – ए रियल फ्रेंड इन नीड।"

नेहा की बातों से प्रेमलता खुशी से फूली न समाई, पर वह कुछ नहीं बोली।

अचानक उसे अम्मा की बातें याद आ गईं। उसने नेहा से पूछ ही लिया, "तुम्हें हिन्दी बोलने से घृणा क्यों है?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं ..." नेहा झेंपती हुई बोली।

प्रेमलता ने समझाना शुरू किया, "मुझे देखो! मैं अंग्रेजी भी लिखती-पढ़ती हूँ क्योंकि अंग्रेजी या कोई अन्य भाषा सीखना अच्छी बात है। मैं तुम्हारी तरह अंग्रेजी बोल भी सकती हूँ। पर जरा सोचो, अगर हमलोग आपस में भी हिन्दी में बातचीत न करें तो क्या यह राष्ट्रभाषा के प्रति अन्याय नहीं होगा।"

नेहा भी अब उसकी बातों से सहमत थी।

तब तक निम्मी का बुखार काफ़ी उतर चुका था। नेहा और प्रेमलता सोफे पर बैठकर बातें कर रही थीं, बहुत सारी बातें। अपने स्कूलों के बारे में, पढ़ाई के बारे में, किताब और खेल के बारे में, टीवी और पिक्चर के बारे में तथा अपनी-अपनी आशाओं और सपनों के बारे में।

अब नेहा और प्रेमलता के बीच भाषा का फ़ासला मिट चुका था और दोस्ती की नई किरण जगमगा उठी।

आंचलिक शब्दावली

मतईपुर कलाँ

अटरिया – घर, मकान
ओके – उसके
दुलहवा – दूल्हा, वर
बहुरिया – बहू
मुदा – लेकिन, पर
सराफत – शराफ़त

बीजी के दो मिनट

कित्थे – कहाँ, किधर
कैनगे – कहेंगे
त्वाडे – तुम्हारे
पाग लगावे – पार लगाये
पुतरां वरगा – बेटे जैसा
पैरीपौना – चरण स्पर्श
रिज़क – रोज़ी-रोटी
साँ – साँस
सौं – कसम
हुँदा वे – होता है

ऐसा भी होता है

अक्खा – सारा
आएला – आया है
खारेला – खा रहा है
खाली पीली – बेकार में
जास्ती – ज़्यादा
याँ – यहाँ
लफड़ा – झंझट

ननकू

अलई – आया है
कइसे – कैसे
कवन – कौन
गोइठा – उपला (गोबर से बना ईंधन)
घाम – धूप
जइतो – जाएगा
जइसन – जैसा
सुखतई – सूखेगा
हालि – जल्दी

खिलवाड़

ईको – इसका
उणके – उसके
काढो – निकालो, उतारो
घणी – ढेर
णीं – नहीं
थारे – तुम्हारे
मिलसी – मिलेगी

साहबज़ादी अंजुम

आमिल – झाड़-फूँक करने वाला
इसरार – हठ, ज़िद
कारचोबी – कशीदाकारी
गुमां – भ्रम, शक
ज़ाफरान – केसर
मुलाज़मत – नौकरी
मुसाहिब – साथ उठने-बैठने वाले

अब्बू की शेरवानी

गुज़ारिश – अनुरोध
फख्र – गर्व
मदरसे – स्कूल
रिये हो – रहे हो

दूरियाँ

यस, थैंक्स – हाँ, धन्यवाद
रस्टिक – देहाती
रियल फ्रेंड – सच्चा मित्र
शॉपिंग – खरीदारी

एक अनोखा संकलन

एक में अनेक की कहानियाँ विविधता लिए हैं। इन्हें पढ़कर बच्चे अनेक रूपों में बोली जाने वाली हिन्दी से परिचित हो सकेंगे और इस भाषा पर गर्व कर सकेंगे। ये कहानियाँ सामाजिक आचार-व्यवहार को भी ध्यान में रखकर लिखी गई हैं।

मुझे पूरी उम्मीद है कि बच्चों को ये कहानियाँ रोचक लगेंगी। इनकी एक खूबी यह भी है कि बड़े भी बच्चों की तरह इनका आनन्द उठा सकते हैं।

प्रयाग शुक्ल

रत्न सागर प्रा॰ लि॰
विराट भवन, मुखर्जी नगर
कमर्शियल कॉम्पलैक्स, दिल्ली 110009
फोन : 7122505, 7216094
ब्रांच : 24 रामानाथन स्ट्रीट, टी. नगर
मद्रास 600017 • फोन : 4346325

ISBN 81-7070-199-6